॥ विहंगिनी काव्य ॥

भाव-क्षितिज : पिंजर-खगिनी

दिव्योन्मादकी धारामें बहते हुए राधाबाबा द्वारा अपने सर्वस्व, व्रजेन्द्रनन्दन प्रभु श्रीपोद्दारजीके सत्य स्वरूपकी अर्चनाका उपक्रम.....। 'पिंजर' प्रतीक है पोद्दारजी का एवं खगिनी है प्रतीक स्वयं राधाबाबा की! इन दोनोंके व्याजसे ही वर्णित है यह रसगाथा।

नाची रसना, रसराज इसे
जैसे जब नचा गए प्रियतम।
वे चाहेंगे, वैसी होगी
यह महाभाव लीला प्रियतम।।

महाभावका दिव्योन्माद

उपर्युक्त भूमिकाके अनन्तर व्रजेन्द्रनन्दन प्रभो! यह निवेदन है :-६ अप्रैल १९६७ के दिन आपके चरण सरोरुहमें निवेदनकी हुई इन पंक्तियोंके-

'विप्रलम्भरसकी धारामें बहता हुआ प्राण दिव्योन्मादकी दशामें आकर एक नवीन वैचित्री धारण कर ले अथवा लौटकर पूर्वरागकी किसी अवस्थामें प्राणोंका तादात्म्य रहे, और उसके अनुभाव मेरी इस टट्टी-मूतकी थैलीपर प्रतिबिम्बित होने लगें।'

इस भावकी, और इससे भी ऊँचे युगपत विप्रलम्भ और संयोगकी अनुभूति-अनिर्वचनीय अचिन्त्य अनुभूतिमें ही मेरे प्राणोंका तादात्म्य ६ मई १९६९ के तीन बजे दिन तक रहा-प्रतिदिन लगभग चौदह-सोलह घंटों तक निरन्तर एक तार। और सहसा उसी दिन तीन बजे महाभावके दिव्योन्मादकी उस भूमिकाका जिसका संकेत मेरे द्वारा हुआ है, एक सौ आठ पदकी इस पंक्तिमें-

तन छाँह थलीमें मिले किन्तु, जल गए वरद वे ही, प्रियतम!

सर्वथा अप्रतिम भूमिकाका निर्माण हो गया, अपितु कहना चाहिए कि उस भूमिकाकी प्रतिष्ठा हो गयी। क्योंकि प्रच्छन्न निर्माण तो हुआ था ११ मई १९३९ के दिन।

उसी प्रतिष्ठित दिव्योन्मादकी लहरोंमें मेरे प्राण बह रहे हैं निरन्तर ६ मई १९६९ के तीन बजे दिनसे। किन्तु जब महाभाव समुद्र अपनी महिमामें ही-उद्वेल्लित होकर अपने स्वरूपभूत तटसे, कथनमात्रके लिए तटसे, क्योंकि वहाँ तट है ही नहीं-अपने ही द्वारा निर्मित फेनरूपी तटसे टकराता है तो उससे बड़े जोरकी ध्वनि होती है। यह ध्वनि ही मेरे मुँहसे संगीतकी स्वरलहरीके रूपमें निःसृत होने लगती है। यह मेरे मन-प्राण-इन्द्रियोंकी दूसरी स्थिति है।

राधा - राधा

उपर्युक्त भूमिका के अनन्तर ब्रजेन्द्र नन्दन प्रभो! यह निवेदन है:-

६ अप्रैल १९६७ के दिन आपके चरण सरोरुह में निवेदन की हुई इन पङ्क्तियों के —

'विप्रलम्भ रस की धारा में बहता हुआ प्राण दिव्योन्माद की दशा में आकर एक नवीन वैचित्री धारण कर ले अथवा लौटकर पूर्वराग की किसी अवस्था में प्राणों का तादात्म्य रहे और उसके अनुभाव मेरी इस टट्टी मूत की थैली पर प्रतिबिम्बित होने लगें। —

इस भाव की, और इससे भी ऊँचे युगपत विप्रलम्भ और संयोग की अनुभूति — अनिर्वचनीय अचिन्त्य अनुभूति में ही मेरे प्राणों का तादात्म्य ६ मई १९६९ के तीन बजे दिन तक रहा — प्रतिदिन लगभग चौदह सोलह घंटों तक निरन्तर एक तार। और सहसा उसी दिन तीनबजे महाभाव के दिव्योन्माद की उस भूमिका का — जिसका सङ्केत मेरे द्वारा हुआ है एक सौ आठ पद की इस पङ्क्ति में- 'तन छोड़ थली में मिले, किंतु, जल गये नाद ने ही प्रियतम!' — सर्वथा अप्रतिम भूमिका का निर्माण हो गया, अपितु कहना चाहिये कि उस भूमिका की प्रतिष्ठा हो गयी। क्योंकि प्रच्छन्न निर्माण तो हुआ था ११ मई १९३९ के दिन।

उसी प्रतिष्ठित दिव्योन्माद की लहरों में मेरे प्राण बह रहे हैं निरन्तर ६ मई १९६९ के तीन बजे दिन से। किन्तु जब महाभाव समुद्र अपनी महिमा में ही — उद्वेलित होकर अपने स्वरूपभूत तट से, — कथन मात्र के लिये तट से, क्योंकि वहाँ तट है ही नहीं — अपने ही द्वारा निर्मित फेनरूपी तट से टकराता है तो उससे बड़े जोर की ध्वनि होती है। यह ध्वनि ही मेरे मुँह से सङ्गीत की स्वरलहरी के रूप में निःसृत होने लगती है। यह मेरे मन प्राण इन्द्रियों की दूसरी स्थिति है।

राधाबाबा की हस्तलिपि

इससे पूर्वकी स्थिति वह है, जिसका संकेत १०८ पदकी इस पंक्तिमें हुआ है–

संविद् वह नील कि पीत बचा यह बनी पहेली है, प्रियतम

पहलीमें इस दृश्य स्थावर जंगमका अत्यन्त अभाव है, हो जाता है।

दूसरी स्थितिमें–आँख यदि खुली है तो–असंख्य द्विभुज किशोर-मूर्ति नन्दनन्दनमें झलमल करता हुआ सा यह नामरूपात्मक दृश्यका भान है, फिर अभाव, फिर भान क्षण-क्षणमें। और यदि आँख बन्द है तो वहाँ भी इस दृश्य स्थावर जंगमका आत्यन्तिक अभाव है–संगीत स्वरलहरी स्वाभाविक निर्झरकी भाँति प्रसरित हो रही है।

तीसरी स्थिति, मन, इन्द्रिय प्राणोंकी यह है–यदि बहिन सामने दीखती है तो उस समय रसराज महाभावके लीलात्मक उद्वेल्लनका चित्रण आरम्भ हो जाता है शब्दोंमें। और यदि बहिन नहीं दीख रही है तो फिर उसी लीलात्मक उच्छल्लनमें मन-प्राण नाचते रहते हैं; रसराज महाभावकी उक्तियाँ भीतर-ही-भीतर अथवा कभी होटोंके स्पन्दनके रूपमें व्यक्त होती रहती हैं।

चौथी स्थिति यह है–रसराज महाभावके उस उद्वेल्लनको, उन लीलाओंको अंकित करनेके प्रयासमें मन-इन्द्रियाँ लग जाती हैं। अथवा उन लीलाओंसे संबद्ध शक्तिदान शक्तिपातके एक विचित्र सन्दर्भके लिखनेमें मन-प्राण तन्मय रहते हैं।

पाँचवीं स्थिति है–या तो उपर्युक्त प्रश्नोत्तरी जैसी, या बहिन सामने है तो टूटे हुए स्वप्नकी स्मृति जैसी इस दृश्य प्रपंचकी कोई बात पूछ ली जाती है अथवा उसे कह दी जाती है।

आज प्रातःकाल ठीक ६ बजकर ५ मिनटपर एक विचित्र उद्वेल्लनमें मेरे मन-प्राण बहने लगे। उसी अवस्थामें मुझे प्रकृतिस्थ किया गया और परिक्रमाके लिए लाया गया।

इससे पूर्व की स्थिति वह है जिसका सङ्केत १०८ पद की इस पङ्क्ति में हुआ है —

संविद वह नील कि पीत बना
यह बनी पहेली है प्रियतम

पहली में इस दृश्य स्थावर जङ्गम का अत्यन्त अभाव है, हो जाता है।

दूसरी स्थिति में — आँख यदि खुली है तो — असंख्य द्विभुज किशोर-मूर्त्ति नन्दनन्दन में झलमल करता हुआ सा यह नामरूपात्मक दृश्य का भान है, फिर अभाव, फिर भान क्षण क्षण में। और यदि आँख बन्द है तो वहाँ भी इस दृश्य स्थावर जङ्गम का आत्यन्तिक अभाव है — सङ्गीत स्वरलहरी स्वाभाविक निर्झर की भाँति प्रसरित होती रहती है।

तीसरी स्थिति, मन, इन्द्रिय प्राणों की यह है:— यदि बहिन सामने दीखती है तो उस समय रसराज महाभाव के लीलात्मक उद्वेलन का चित्रण आरम्भ हो जाता है शब्दों में। और यदि बहिन नहीं दीख रही है तो फिर उसी लीलात्मक उच्छलन में मन प्राण नाचते रहते हैं; रसराज महाभाव की उक्तियाँ भीतर ही भीतर अथवा कभी होठों के स्पन्दन के रूप में व्यक्त होती रहती हैं। चौथी स्थिति यह है:—

रसराज महाभाव के उस उद्वेलन को, उन लीलाओं को अङ्कित करने के प्रयास में मन इन्द्रियाँ लग जाती हैं। अथवा उन लीलाओं से संबद्ध शक्तिदान शक्तिपात के एक विचित्र सन्दर्भ के लिखने में मन प्राण तन्मय रहते हैं।

पाँचवीं स्थिति है — या तो उपर्युक्त प्रश्नोत्तरी जैसी या बहिन सामने है तो टूटे हुए स्वप्न की स्मृति जैसी इस दृश्य प्रपञ्च की कोई बात पूछ ली जाती है अथवा उसे कह दी जाती है।

आज प्रातःकाल ठीक छः बजकर पाँच मिनट पर एक विचित्र उद्वेलन में मेरे मन प्राण बहने लगे। उसी अवस्था में मुझे प्रतिष्ठित किया गया और परिक्रमा के लिये लाया गया।

शतक

वंदन है शत सहस्रशः उस धरणीके रज-कणको प्रियतम !
पिंजर वह इन्द्रनीलमय है शोभित हो रहा जहाँ प्रियतम !
आकर्षण अभिनव वह उसमें है अबतक भरा हुआ प्रियतम !
मोहित हो जिससे थी उतरी नभसे विहंगिनी मैं प्रियतम !१!

पासकी न अहो! गन्ध भी यह उस समय तनिक ऐसी प्रियतम !
निर्माण किया है तुमने ही इसको, अपने करसे प्रियतम !
किंचित्-सा उपादान लेकर अपने ही उस तनसे प्रियतम !
नीलिमा अनिर्वचनीय नित्य वह है अचिन्त्य जिसमें प्रियतम !२!

थी श्रमित हुई उड़ती-उड़ती निस्सीम गगन-तलमें प्रियतम !
मेरे ही साथ सदा तुम थे हँस-हँसकर खेल रहे प्रियतम !
समझाते पुनः पुनः तुम थे 'प्रियतमे! चलो बैठें' प्रियतम !
छूटी न किन्तु हठ उड़नेकी जो है स्वभावमें ही प्रियतम !३!

फिर, हुए अधीर मुझे अतिशय देखा जब थकी हुई प्रियतम !
कौशल अपनाकर, जाल नया फैलाया क्षणमें ही प्रियतम !
सहसा अवनीकी ओर दृष्टि मेरी गड़ गयी तथा प्रियतम !
दीखा श्यामल सुन्दर पिंजर अब तो गति रुद्ध हुई प्रियतम !४!

वंदन है शत-सहस्रशः उस धरणीके रज-कणको प्रियतम!

पिञ्जर वह इन्द्र-नीलमय है शोभित हो रहा जहाँ प्रियतम!

आकर्षण अभिनव वह उसमें है अबतक भरा हुआ प्रियतम!

मोहित हो जिससे थी उतरी नभसे विहंगिनी-मैं प्रियतम!

पा सकी न अहो! गन्ध भी वह उस समय तनिक ऐसी प्रियतम!

निर्माण किया है तुमने ही इसको, अपने करसे प्रियतम!

किञ्चित्-सा उपादान लेकर अपने ही उस तनसे प्रियतम!

नीलिमा अनिर्वचनीय नित्य वह है अचिन्त्य जिसमें प्रियतम!

थी भ्रमित हुई उड़ती उड़ती निस्सीम गगन-तलमें प्रियतम!

मेरे ही साथ सदा तुम थे हँस-हँसकर खेल रहे प्रियतम!

समझाते पुनः पुनः तुम थे 'प्रियतमे! चलो बैठें' प्रियतम!

छूटी न किंतु हठ उड़नेकी जो है स्वभावमें ही प्रियतम!

फिर, हुए अधीर मुझे अतिशय देखा जब थकी हुई प्रियतम!

कौशल अपना कर, गगन नया फैलाया क्षणमें ही प्रियतम!

सहसा अवनीकी ओर दृष्टि मेरी गड़ गयी तथा प्रियतम!

देखा श्यामल सुन्दर पिञ्जर अब तो गति मन्द हुई प्रियतम!

ढल पड़ी निकट आकर, फेरी दो चार बार उसकी, प्रियतम !
दी, और अचानक यन्त्रित-सी घुस पड़ी भला उसमें प्रियतम !
हो गया द्वार बस, रुद्ध और फँस गयी चंचला मैं प्रियतम !
विश्राम-सदनमें मुझको तुम लाकर इस भाँति हँसे प्रियतम !५!

उसके पश्चात् अहर्निश जो घटनाएँ वहाँ घटीं प्रियतम !
विवरण उनका अब कौन करे संचित हैं हृत्तलमें प्रियतम !
द्रुम-पत्रावलि उन छिद्रोंके पथसे आती, उससे प्रियतम !
छू जाता चंचु, और उसपर अंकित कुछ हो जाती प्रियतम !६!

बाहर समीर उस पथसे ही उसको फिर ले जाता प्रियतम !
सौरभसे सनी हुई उसकी मोहकता अब बढ़ती प्रियतम !
पर गन्ध-फलीका वह वन था, भौंरा कैसे आवे प्रियतम !
फिर थी बिखरी पत्रावलि, ले उद्दाम पवन भागा प्रियतम !७!

पंङ्किल थलमें कुछ नष्ट हुई, काँटोंकी झाड़ीमें प्रियतम !
कुछ गिरी, बची फिर भी कुछ थी, पर था विधान ऐसा प्रियतम !
हो जायँ लुप्त अंकित बातें लीला की तुमने ही प्रियतम !
दावाकी एक लहर आयी स्वाहा हो गयी सभी प्रियतम !८!

टल पड़ी निकट आकर, फेरी दो चार बार उसकी, प्रियतम!
दी, और अचानक यन्त्रित-सी घुस पड़ी भला उसमें प्रियतम!
हो गया द्वार बस, रुद्ध और फँस गयी चञ्चला मैं प्रियतम!
विश्राम-सदन में मुझको तुम लाकर इस भाँति हँसे प्रियतम!

उसके पश्चात् अहर्निश जो घटनाएँ वहाँ घटीं प्रियतम!
विवरण उनका अब कौन करे सञ्चित हैं हृत्तल में प्रियतम!
द्रुम-पत्रावलि उन छिद्रों के पथ से आती, उससे प्रियतम!
छू जाता चंचु, और उस पर अंकित कुछ हो जाती प्रियतम!

बाहर समीर उस पथ से ही उसको फिर ले जाता प्रियतम!
सौरभ से सनी हुई उसकी मोहकता सब कहती प्रियतम!
पर गन्ध-फली का वह वन था, भौंरा कैसे आवे प्रियतम!
फिर भी बिखरी पत्रावलि, ले उद्दाम पवन भागा प्रियतम!

पङ्किल थल में कुछ नष्ट हुईं, काँटों की झाड़ी में प्रियतम!
कुछ गिरीं, बची फिर भी कुछ थीं, पर था विधान ऐसा प्रियतम!
हो जायँ लुप्त अङ्कित बातें लीला की तुमने ही प्रियतम!
दावा की एक लहर आयी स्वाहा हो गयी सभी प्रियतम!

आँधी फिर एक बड़ी आई, चिन्तित मैं स्वयं हुई प्रियतम !
पिंजर न कहीं उड़ जाय और वे टूट जायँ सपने प्रियतम !
जिनको प्रति पल थी सजा रही, रो-रोकर मैं भोली प्रियतम !
तुम हँसे, और आकाश बना निर्मल निमेष ही में प्रियतम !९!

रजनी आती, दिनकर हँसता, क्रमशः सब ऋतुएँ भी प्रियतम !
आकर अपनी-अपनी क्रीड़ा दिखलाकर छिप जाते प्रियतम !
कैसी, क्या-क्या अनुभूति हुई मुझको उन वर्षोंमें प्रियतम !
बन जाय पुराण नवीन अहो ! गाने लग जाऊँ जो प्रियतम !१०!

जितना सम्भव हो, मौन रहे, है रसकी परिपाटी प्रियतम !
इसलिए प्यारकी वह गाथा ले जाऊँगी मनमें प्रियतम !
चर्चा पर जब कर बैठी हूँ तो इतनी-सी कह दूँ प्रियतम !
कुछ बात बदलकर वर्तमान एवं अतीतकी भी प्रियतम !११!

दीना खिन्ना भ्रमिता भूखी पिंजरसे जुड़ती-सी प्रियतम !
थी पड़ी, द्रवित होकर तुमने छातीसे लगा लिया प्रियतम !
दे रखा जीवनेश्वरी तथा प्रियतमा वल्लभाका, प्रियतम !
जो पद था, नित्य मुझे उसका संकेत चले करने प्रियतम !१२!

आँधी फिर एक बड़ी आई, चिन्तित मैं स्वयं हुई प्रियतम!
पिंजरा न कहीं उड़ जाय और वे टूट जायँ सपने प्रियतम!
जिनको प्रति पल थी सजा रही, रो रो कर मैं बोली प्रियतम!
तुम हँसे, और आकाश बना निर्मल निमेष ही में प्रियतम!

रजनी आती, दिनकर हँसता, क्रमशः सब ऋतुएँ भी प्रियतम!
आकर अपनी अपनी क्रीड़ा दिखला कर छिप जाते प्रियतम!
मैं ही, क्या क्या अनुभूति हुई मुझको उन वर्षों में प्रियतम!
बन जाय पुराण नवीन कहो! गाने लग जाऊँ जो प्रियतम!

जितना सम्भव हो, मौन रहे, है रस की परिपाटी प्रियतम!
इसलिये प्यार की वह गाथा- ले जाऊँगी मन में प्रियतम!
चर्चा पर जब कर बैठी हूँ तो इतनी-सी कह दूँ प्रियतम!
कुछ बात बदल कर वर्तमान एवं अतीत की भी प्रियतम!

वीणा खिन्ना भ्रमिता भूली पिंजर से उड़ती-सी प्रियतम!
थी पड़ी, द्रवित होकर तुमने छाती से लगा लिया प्रियतम!
दे रखा जीवनेश्वरी तथा प्रियतमा वल्लभा का, प्रियतम!
जो पद था, नित्य मुझे उसका संकेत चले करते प्रियतम!

क्षण एक हुआ था आई ही पिंजर-परिसरमें थी प्रियतम !
उसके काले घेरेका था छू गया अंश मुझसे प्रियतम !
ऐसी प्रतीति उस समय हुई मानो चिर परिचित था प्रियतम !
सुन्दर वह नित्य भवन मेरा, भूला-सा हुआ अभी प्रियतम !१३!

द्वादशी प्रदोष समय आश्विन शुक्लाकी यह घटना प्रियतम !
तेइस वर्षोंसे पहले की वैसी ही दीख रही प्रियतम !
पर जो फुलेलका ही करके आचमन कहे मीठा प्रियतम !
देना फिर उसको पुष्प-सार केवल गँवारपन है प्रियतम !१४!

दोहा* प्राचीन एक कविका है भाव लिए ऐसा प्रियतम !
जो है घट चुका सत्य बनकर कुछ वर्ष अभी पहले प्रियतम !
जीवनमें इस विहंगिनीके कर-करके व्यथित इसे प्रियतम !
कम-से-कम नौ दस बार, अतः रुक रही गिरा अब है प्रियतम !१५!

जो समझ सके, समझे इसको आगे चलती मैं हूँ प्रियतम !
छब्बीस पहरकी सरस विरस अनुभूति न कहकर ही प्रियतम !
समला प्रवाहिनी क्षुद्र एक जो थी उसके तटकी प्रियतम !
बातोंको छूती हुई तनिक दाएँ बाएँ मुड़ती प्रियतम !१६!

---

* *करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि।*
रे गंधी मतिमंद तू अतर दिखावत काहि।

क्षण एक हुआ था आई थी पिञ्जर-परिसर में थी प्रियतम!
उसके काले घेरे का था छू गया अंश मुझसे प्रियतम!
ऐसी प्रतीति उस समय हुई मानो चिर परिचित था प्रियतम!
सुन्दर वह नित्य भवन मेरा, भूला-सा हुआ अभी प्रियतम!

द्वादशी प्रदोष समय आश्विन शुक्ला की यह घटना प्रियतम!
तेइस वर्षों से पहले भी वैसी ही दीख रही प्रियतम!
पर जो फुलेल का ही करके आचमन कहे मीठा प्रियतम!
देना फिर उसको पुष्प-हार केवल गँवारपन है प्रियतम!

दोहा प्राचीन एक कवि का है भाव लिये ऐसा प्रियतम!
जो है घट चुका सत्य बनकर कुछ वर्ष अभी पहले प्रियतम!
जीवन में इस विरहिणी के कर करके व्यथित रहे प्रियतम!
कम-से-कम नौ दसबार, अतः कह रही गिरा अब है प्रियतम!

जो समझ सके, समझे इसको आगे चलती मैं हूँ प्रियतम!
छब्बीस पहर की सरस विरस अनुभूति न कहकर ही प्रियतम!
सजला प्रवाहिनी क्षुद्र एक जो थी उसके तट की प्रियतम!
कानों को छूती हुई तनिक दायें बाँये मुड़ती प्रियतम!

करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि।
रे गंधी मतिमंद तू अतर दिखावत काहि

क्या से क्या कुछ दिनमें ही था जीवनका हाल हुआ प्रियतम !
कैसे बह गयी ज्ञान-गरिमा इस नीली धारामें प्रियतम !
कैसे क्रमशः पिंजरमें थी आसक्ति बढ़ी मेरी प्रियतम !
सुनने वाला न मिला इसको, सुननेवाली न मिली प्रियतम !१७!

जो हो, फिर परिच्छेद मधुमय आया जिसमें तुमने प्रियतम !
माया थी रची चित्रपटके होठोंकी ओट लिए प्रियतम !
'प्रगट्यो ग्वालिनी नेह पूरन' पदका अन्तस्तलमें प्रियतम !
नयनोंमें और अहंतामें था राग लगा छिड़ने प्रियतम !१८!

जो ज्ञान शुद्ध रसमय तरु दो तोरण हैं बने हुए प्रियतम !
है एक सारथी रथ चिन्हित, मुनि कीर एक पर है प्रियतम !
सन्धिस्थलपर मिलती-सी हैं दो सत्ता जहाँ अहो! प्रियतम !
इस दृश्य विश्वका इधर,और उस ओर तूर्य रसका प्रियतम !१९!

दोनों द्रुमसे लिपटी फूली वह भावमयी वल्ली प्रियतम !
जो है, उसकी टहनीपर ही पिंजरा था झूल रहा प्रियतम !
उसके भीतर पत्रोंसे सट बैठी थी मैं बिहगी प्रियतम !
उन रागोंसे मन बहलाती उरमें रखकर तुमको प्रियतम !२०!

क्या से क्या कुछ दिनमें हो था जीवनका हाल हुआ प्रियतम!
कैसे घट गयी शान-गरिमा इस नीली आभामें प्रियतम!
कैसे क्रमशः चित्रपटमें थी आसक्ति बढ़ी मेरी प्रियतम!
सुननेवाला न मिला इसको, सुननेवाली न मिली प्रियतम!

जो हो, फिर पटीच्छेद मधुमय आया जिसमें तुमने प्रियतम!
माया भी रची चित्रपटके दोनोंकी ओर लिये प्रियतम!
'प्रगटयो ग्वालिनी नेह पूरन' पदका अनहलमें प्रियतम!
नयनोंमें और अंतामें था राग लगा छिड़ने प्रियतम!

जो शान शुद्ध स्तम्भ तरू दो तोरण हैं बने हुए प्रियतम!
है एक सारथी रथ चिन्हित, मुनि वीर एक पर है प्रियतम!
सन्धिस्थल पर मिलती-सी हैं दो सत्ता जहाँ खड़ी! प्रियतम!
इस दृश्य विश्वका इधर, और उस ओर पूर्ण रसका प्रियतम!

दोनों द्रुमसे लिपटी फूली वह भावमयी वल्ली प्रियतम!
जो है, उसकी टहनी पर ही पिंजरा था झूल रहा प्रियतम!
उसके भीतर पन्नोंसे सट बैठी थी मैं बिहगी प्रियतम!
उन रागोंसे मन बहलाती उसमें रहकर तुमको प्रियतम!

कोई क्षण भरके लिए विहग बाहरका सुन लेता प्रियतम !
मेरा स्वर, और मुग्ध होता, पर दाद न दे पाता प्रियतम !
केदारा, नट या मालकोश पीलू ही गाती थी प्रियतम !
मेरे पर षडज ऋषभ सब वे थे भिन्न, न मिलते थे प्रियतम !२१!

संचालित तुम कर देते थे पिंजड़े को, वह हिलता प्रियतम !
झोंटा खाकर डर जाती थी, सुखमत्त कभी होती प्रियतम !
चिन्तित-सी कभी क्षणिक होती, भावी है क्या मेरी प्रियतम !
पर हुआ न अहो विराम कभी मेरी स्वर-लहरी का प्रियतम !२२!

अब सुनो रसीली वह गाथा, तुमने सरकाया था प्रियतम !
पिंजड़ेको उस टहनीपर ही, पूरबकी ओर किया प्रियतम !
मैं लगी देखने दृश्य सुखद शुभ था विपाक आया प्रियतम !
भावुकतामय मेरे जो थे वे सत् प्रयास उनका प्रियतम !२३!

वैकुण्ठ नामकी नगरी थी, ज्ञानी थे एक वहाँ प्रियतम !
राजा विदेहके सदृश भला प्रेमी रघुकुलमणिके प्रियतम !
आदर्श चरित्रोंके वे थे, 'जय सीताराम' तथा प्रियतम !
'नारायण' नाम अधिक उनको प्रिय था ऐसा लगता प्रियतम !२४!

कोई क्षण भर के लिये विहग बाहर का सुन लेता प्रियतम ।
मेरा स्वर, और मुग्ध होता, पर दाद न दे पाता प्रियतम ।।
केदारा, नट या मालकोश पीलू ही गाती थी प्रियतम ।
मेरे पर षडज ऋषभ सब के थे भिन्न, न मिलते थे प्रियतम ।।

सञ्चालित तुम कर देते थे पिंजड़े को, वह हिलता प्रियतम ।
झोंटा खाकर डर जाती थी, पुलकित भी होती प्रियतम ।।
चिन्तित-सी कभी क्षणिक होती, भावी है क्या मेरी प्रियतम ।
पर बुझा न मुझे विराम कभी मेरी स्वर-लहरी का प्रियतम ।।

अब सुनो रसीली वह गाथा, तुमने सरकाया था प्रियतम ।
पिंजड़े को उस टहनी पर ही, पूरब की ओर किया प्रियतम ।।
मैं लगी देखने दृश्य सुखद शुभ था विपाक आया प्रियतम ।
भावुकतामय मेरे जो थे वे सत् प्रयास उनका प्रियतम ।

वैकुण्ठ नामकी नगरी थी, ज्ञानी थे एक वहाँ प्रियतम ।
राजा विदेह के सदृश भला प्रेमी रघुकुलमणि के प्रियतम ।
आरती चौलों के वे थे, 'जय सीताराम' तथा प्रियतम ।
'नारायण' नाम अधिक उनको प्रिय था ऐसा लगता प्रियतम ।।

जीवनमें उनके छाया थी उस तुलाधारकी भी प्रियतम !
थे अतिशय सरल, दक्षपर थे जगके व्यवहारोंमें प्रियतम !
देखा था उनको मैंने जब आकाशचारिणी थी प्रियतम !
होती थी सुनकर फुल्ल सदा प्रवचन पवित्र उनका प्रियतम !२५!

पिंजड़ेपर हाथ धरे रहते हरदम वे थे अपने प्रियतम !
थे खड़े उधर तुम भी छिपकर उसपर कर मृदुल रखे प्रियतम !
थी नहीं अहंता उनमें, फिर पिंजड़ेमें क्या रहती प्रियतम !
मुझसे विनोद करनेकी थी वह युक्ति अहा कैसी प्रियतम !२६!

बातें सुरसरिता-तटपरकी रवितनय तपोवनकी प्रियतम !
वे हैं इससे पहलेकी, पर कहने लग जाऊँ जो प्रियतम !
लंबी अत्यधिक कथा होगी, श्रोता भी है न यहाँ प्रियतम !
जिसके दृग बनें सजल सुनकर, इसलिए छोड़ दी है प्रियतम !२७!

इच्छा थी केवल आठ गीत लेकर उन गीतोंसे प्रियतम !
गा जाऊँ, पर लीला जब है हो रही यहाँ ऐसी प्रियतम !
है उचित यही कुछ दिन देखूँ, कैसे क्या होता है प्रियतम !
तुम तो हँसते ही हो हरदम, मैं भी क्यों नहीं हँसू प्रियतम !२८!

जीवनमें उनके छाया थी उस तुलाधारकी भी प्रियतम।
थे अतिशय सरल, इस पर थे गाके व्यवहारों में प्रियतम॥
देखा था उनको मैंने जब आकाशचारिणी थी प्रियतम।
होती थी सुनकर फुल्ल सदा प्रवचन पवित्र उनका प्रियतम॥

पिंजड़े पर हाथ धरे रहते हरदम वे थे अपने प्रियतम।
थे खड़े उधर तुम भी छिपकर उस पर कर मृदुल रवि·प्रियतम॥
थी नहीं अहंता उनमें, फिर पिंजड़े में क्या रहती प्रियतम।
तुमसे विनोद करने की थी वह युक्ति अहा कैसी प्रियतम॥

बातें सुरसरिता-तट पर की रचितनय तपोवनकी प्रियतम।
वे हैं इससे पहले की, पर कहने लग जाऊँ जो प्रियतम॥
लँबी अत्यधिक कथा होगी, श्रोता भी है न यहाँ प्रियतम।
जिसके दृग बनें सजल सुनकर, इसलिये छोड़ दी है प्रियतम॥

इच्छा थी केवल आठ गीत लेकर उन गीतों से प्रियतम।
गा जाऊँ, पर लीला जब है हो रही यहाँ ऐसी प्रियतम॥
है उचित यही कुछ दिन देखूँ, कैसे क्या होता है प्रियतम।
तुम तो हँसते हो हो हरदम, मैं भी क्यों नहीं हँसूँ प्रियतम॥

अभिनव रंगस्थलकी रचना पहले हो जाय तभी प्रियतम !
गानेवाली गाऊँ मैं, तुम सुननेवाले सुनलो प्रियतम !
संभव है कुछ ऐसा ही तुम हँसकर हो सोच रहे प्रियतम !
इसलिये रोक देते हो तुम लोनी दृगभंगीसे प्रियतम !२९!

पर इन पद-नलिनोंकी रजकी परछाँई भी मुझसे प्रियतम !
सपनेमें भी न तिरस्कृत हो, यह सत्य मनोरथ है प्रियतम !
वे गीत न सही, चलो आगे अब 'महाभाव' का ही प्रियतम !
संगीत सुनाऊँ मैं तुमको धीमे-धीमे स्वर में प्रियतम !३०!

सोई थी वह निकुंजमें तुम जिसको प्रियतमे! अहो प्रियतम !
हे प्राणवल्लभे! ईश्वरि हे प्राणोंकी कहते हो प्रियतम !
तुम उसके चरण-सरोरुहको अपनी अलकावलिसे प्रियतम !
थे पौंछ रहे धीरे धीरे, श्रीमुख था राग-भरा प्रियतम !३१!

मृदुल स्मितमें गहरापन था, आँखोंकी मद-धारा प्रियतम !
थी आज अधिक गहरी, कुछ थे वे अंग शिथिल गोरे प्रियतम !
श्रम-सीकर उदित कपोलोंपर होनेवाले-से थे प्रियतम !
हेमन्त वातसे रह-रहकर तन छू जाने पर भी प्रियतम !३२!

अभिनव रंगस्थलकी रचना पहले होजाय तभी प्रियतम।
गानेवाली गाऊँ मैं, तुम सुननेवाले सुन लो प्रियतम॥
संभव है कुछ ऐसा ही तुम हँसकर हो सोच रहे प्रियतम।
इसलिये रोक देते हो तुम लोनी दृगभंगीसे प्रियतम॥

पर इन पद-नलिनोंकी रजकी परछाँई भी मुझसे प्रियतम।
सपनेमें भी न तिरस्कृत हो, यह सत्य मनोरथ है प्रियतम॥
वे गीत न सही, चलो आगे अर्थ महाभाव का ही प्रियतम।
संगीत सुनाऊँ मैं तुमको धीमे धीमे स्वरमें प्रियतम॥

सोई थी वह निकुञ्जमें तुम जिसको प्रियतमे! कहते प्रियतम।
हे प्राणवल्लभे! ईश्वरि हे प्राणोंकी कहते हो प्रियतम॥
तुम उसके चरण-सरोरुहको अपनी अलकावलिसे प्रियतम।
थे पोंछ रहे धीरे धीरे, श्रीमुख था राग-भरा प्रियतम॥

मृदुल स्मितमें गहरापन था आँखोंकी मद-धारा प्रियतम।
थी आज अधिक गहरी, कुछ थे वे अंग शिथिल गोरे प्रियतम॥
श्रम-सीकर उदित कपोलों पर होनेवाले-से थे प्रियतम।
हेमन्त वातसे रह रहकर तन छू जाने पर भी प्रियतम॥

रजनी भी प्रायः बीत गयी उजियारी चौदसकी प्रियतम !
पत्तोंसे विरचित वातायन कम्पित हो जाता था प्रियतम !
उस पथसे ही हिमकर-किरणें होकर शर्मीली-सी प्रियतम !
उस कुंजथलीकी देवीको लेती थीं देख कभी प्रियतम !३३!

जिज्ञासा-भरे लोचनोंसे तुमने उसके मुखको प्रियतम !
देखा था क्षणभर, और हुए शंकित उन चिन्होंसे प्रियतम !
व्रजवाम-दृगोंकी भंगीके जो अर्थ मनोहर हैं प्रियतम !
उनका पण्डित तुम-सा न हुआ, है नहीं, न होगा ही प्रियतम !३४!

तुम लगे सोचने भ्रम ऐसा है हुआ न कभी मुझे प्रियतम !
हैं सत्य मानिनी जीवनकी रानी हो रहीं अभी प्रियतम !
मैं भले न कारण जान सकूँ या सिद्ध इसे कर दूँ प्रियतम !
हूँ चूक गया पर मैं अवश्य इस समय कहीं न कहीं प्रियतम !३५!

अन्तर्मनकी चिन्ता यह थी नीले मुखपर आयी प्रियतम !
इन बिम्बविडम्बी अधरोंका 'सी सी' रव बन करके प्रियतम !
तत्काल उठी प्रियतमा और कर-पल्लवकी माला प्रियतम !
वल्लभकी ग्रीवामें पहना ढल पड़ी अंशपर थी प्रियतम !३६!

रजनी थी प्रायः बीत गयी उजियारी चौदस की प्रियतम।
पत्तों से विरचित वातायन कम्पित हो जाता था प्रियतम॥
उस पथ से ही हिमकर-किरणें होकर शर्मीली-सी प्रियतम।
उस कुंजस्थली की देवी को लेती थीं देख कभी प्रियतम॥

जिज्ञासा भरे लोचनों से तुमने उसके मुख को प्रियतम।
देखा था क्षण भर, और हुए शंकित उन चिन्हों से प्रियतम॥
व्रजवाम-दृगों की भंगी के जो अर्थ मनोहर हैं प्रियतम।
उनका पण्डित तुम-सा न हुआ, है नहीं, न होगा ही प्रियतम॥

तुम लगे सोचने प्रश्न ऐसा है हुआ न कभी मुझे प्रियतम।
हैं सत्य मानिनी जीवन की रानी हो रहीं अभी प्रियतम॥
मैं भले न कारण जान सकूँ या सिद्ध इसे कर दूँ प्रियतम।
हूँ चूक गया पर मैं अवश्य इस समय कहीं न कहीं प्रियतम॥

अन्तर्मन की चिन्ता यह भी नीले मुख पर आयी प्रियतम।
इन बिम्बविडम्बी अधरों का सी सी रव बन करके प्रियतम॥
तत्काल उठी प्रियतमा और कर-पल्लव की माला प्रियतम।
वल्लभ की ग्रीवा में पहना ढल पड़ी अंश पर थी प्रियतम॥

वैसे ही मुद्रित नयन हुए तुम साँवर सुन्दरके प्रियतम !
नीरवताका आवरण लिए प्राणोंमें प्राण मिले प्रियतम !
अनुभूति परस्पर रसमय दो प्राणोंकी एक हुई प्रियतम !
संविद् वह नील कि पीत बचा यह बनी पहेली थी प्रियतम !३७!

कुछ तो था बचा अवश्य वहाँ, इससे क्या अधिक कहूँ प्रियतम !
सच तो यह है निर्देश अहो सर्वथा असम्भव है प्रियतम !
कहनेवाली सुननेवाले दोनों जब एक हुए प्रियतम !
फिर कौन, कहाँ, किससे, क्या तो कह दे, अथवा सुन ले प्रियतम !३८!

जैसे पर चंचल लहरें हैं सागरकी टकराती प्रियतम !
दो भिन्न दिशाओंसे आकर कण-कण मिल जाता है प्रियतम !
है दो प्रवाह उसमें तथापि, देखें हम, मत देखें प्रियतम !
उच्छलित बूँद भी होती है, वैसे ही कह-सुन लें प्रियतम !३९!

कहनेके लिए श्यामवर्णा रमणी थी एक वहाँ प्रियतम !
थी किंतु मनोहर पिंगलता उसके हृदयस्थलमें प्रियतम !
आँखें थीं सजल, मुक्तकेशी विक्षिप्त हुई-सी थी प्रियतम !
अपना इतिवृत्त सुनाती कुछ अपनेको ही वह थी प्रियतम !४०!

वैसे ही मुद्रित नयन हुए तुम साँवर सुन्दर के प्रियतम।
नीरवता का आवरण लिये प्राणों में प्राण मिले प्रियतम॥
अनुभूति परस्पर समय से प्राणों की एक हुई प्रियतम।
संविद् वह नील कि पीत बना पर बनी पहेली सी प्रियतम॥

कुछ तो था बचा अवश्य वहाँ, इससे क्या अधिक कहूँ प्रियतम।
सच तो यह है निर्देश उसे सर्वथा असम्भव है प्रियतम॥
कहनेवाली सुननेवाले दोनों जब एक हुए प्रियतम।
फिर कौन, कहाँ, किससे, क्या तो कह दे, अथवा सुन ले प्रियतम॥

जैसे पर चञ्चल लहरें हैं सागर की टकराती प्रियतम।
दो भिन्न दिशाओं से आकर कण-कण मिल जाता है प्रियतम॥
है दो प्रवाह उनमें तथापि, देखें एक, मत देखें प्रियतम।
उच्छलित बूँद भी होते हैं, वैसे ही कह-सुन लें प्रियतम॥

कहने के लिये श्यामवर्णा रानी थी एक वहाँ प्रियतम।
थी किंतु मनोहर पिंगलता उसके हृदयस्थल में प्रियतम॥
आँखें थी सजल, मुक्तकेशी विक्षिप्त हुई-सी थी प्रियतम।
अपना इतिवृत्त सुनाती कुछ अपने को ही वह थी प्रियतम॥

बोली वेदना भरे स्वरमें दोलित कर चिकुरोंको प्रियतम !
कोई न बची, जिसकी काली पुतलीको देख सकूँ प्रियतम !
दर्पण होता अपने दृगका प्रतिबिम्ब देख लेती प्रियतम !
मैंने ही फोड़ दिया उसको चिढ़कर हँसता वह था प्रियतम !!४१!!

यह सूख गयी नीली सरिता, सागर वह सूख गया प्रियतम !
जलते तनको शीतल कर लूँ पैठी थी मैं इनमें प्रियतम !
ये सह न सके मेरी ज्वाला उसमें ही लुप्त हुए प्रियतम !
परछाँही-दर्शनका साधन खो गया सुलभतम भी प्रियतम !४२!

मिट गए सदाके लिए यहाँ वे देव किरणमाली प्रियतम !
मिट गयी किरणकी राशि सृजन करनेवाली छाया प्रियतम !
मैं खड़ी हुई ही थी आकर जाँचूँ कण एक दया प्रियतम !
तन छाँह थलीमें मिले, किंतु जल गए वरद वे ही प्रियतम !४३!

उनके ही साथ जला हिमकर रजनी-दिन अब न रहे प्रियतम !
है एक अँधेरा, इसीलिए जीती अब तक मैं हूँ प्रियतम !
तुम अहो त्रिभंगीनाथ रमण मोहन जीवनधनकी प्रियतम !
आकृति उसकी छाया न सही, है बची कृष्णता जो प्रियतम !४४!

बोली वेदना भरे स्वर में दोलित कर चिकुरों को प्रियतम।
कोई न बची, जिसकी काली पुतली को देख सकूँ प्रियतम॥
दर्पण होता अपने दृग का प्रतिबिम्ब देख लेती प्रियतम।
मैंने ही फोड़ दिया उसको चिढ़कर हँसता वह था प्रियतम॥

वह सूख गयी नीली सरिता, सागर वह सूख गया प्रियतम।
जलते तन को शीतल कर लूँ पैठी थी मैं इनमें प्रियतम॥
ये सह न सके मेरी ज्वाला उसमें ही बुझ हुए प्रियतम।
परछाँही-दर्शन का साधन खो गया दुर्लभतम भी प्रियतम॥

मिट गये सदा के लिये यहाँ वे देव किरणमाली प्रियतम।
मिट गयी किरण की नाशं सृजन करनेवाली क्षमा प्रियतम॥
मैं खड़ी हुई ही थी आकर जाँचूँ कु. एक दया प्रियतम।
तन छाँह थली में मिले, किंतु जल गये बरद वे ही प्रियतम॥

उनके ही साथ जला हिमकर रजनी-दिन अब न रहे प्रियतम।
है एक अँधेरा, इसीलिये जीती अब तक मैं हूँ प्रियतम॥
तुम अहो त्रिभंगीनाथ कृष्ण मोहन जीवनधन की प्रियतम।
आकृति उसकी छाया न सही, है बची कृष्णता जो प्रियतम॥

श्रवणोंमें वेणुनादकी सच झंकृति थी या भ्रम था प्रियतम !
हूँ पूछ चुकी आकाश मुझे बतला दे बात सही प्रियतम !
उत्तर पर इसने नहीं दिया मत दे, क्या करना है प्रियतम !
भ्रम था तो मिटे न कभी, सत्य यदि था, धिक् है मुझको प्रियतम!४५!

उन कोमल कर-कमलोंकी, फिर उन अधर सुमन-दलकी प्रियतम !
त्वक्पर थी छाप पड़ी, अथवा वह मात्र कल्पना थी प्रियतम !
रे पवन! कभी मत बतलाना, सौ बार भले पूछूँ प्रियतम !
कह कर अबला बधका पातक चिरकाल न तू ढोना प्रियतम !४६!

भस्मावशेष अब हुए तपन शशि पुनः कदाचित् हों प्रियतम !
जीवित अपने ही किसी पुण्यबलसे चलकर आगे प्रियतम !
दोनोंसे ही विनती यह है मेरी, वे सदय बनें प्रियतम !
वह रूप-दृगोंमें सच आया, या चिन्तन था, न कहें प्रियतम !४७!

वह सत्य निराविल सुधामयी रस पान-मत्तता थी प्रियतम !
माया थी केवल रची हुई अथवा मेरी अपनी प्रियतम !
जानूँ, है चाह नहीं अब, है हित भी न जाननेमें प्रियतम !
जब दूर पिलानेवाला है, इस पीनेवालीसे प्रियतम !४८!

श्रवणों में वेणुनाद की सच झंकृति थी या भ्रम था प्रियतम।
हूँ पूछ चुकी आकाश मुझे बतला दे बात सही प्रियतम॥
उत्तर पर इसने नहीं दिया मत दे, क्या करना है प्रियतम।
भ्रम था तो मिटे न कभी, सत्य यदि था, फिक्र है मुझको प्रियतम॥

उन कोमल कर-कमलों की, फिर उन अधर सुमन-दलकी प्रियतम।
त्वक् पर भी छाप पड़ी, अथवा वह मात्र कल्पना थी प्रियतम॥
हे पवन! कभी मत बतलाना, सौ बार भले पूछूँ प्रियतम।
कह कर अबला-वध का पातक चिरकाल न तू ढोना प्रियतम॥

भस्मावशेष अब हुए नयन शशि पुनः कदाचित हों प्रियतम।
जीवित अपने ही किसी पुण्यबलसे चलकर आगे प्रियतम॥
दोनों से ही विनती यह है मेरी, वे सदय बनें प्रियतम।
वह रूप दृगों में सच आया, या चिन्तन था, न कहें प्रियतम॥

वह सत्य निराविल सुधामयी रसपान-मत्तता थी प्रियतम।
माया थी केवल रची हुई अथवा मेरी अपनी प्रियतम॥
जानूँ, है चाह नहीं अब, है हित मौन जानने में प्रियतम।
जब दूर पिलानेवाला है, इस पीनेवाली से प्रियतम॥

हो गयी धरा परिणत भीषण सर्वथा मरुस्थलमें प्रियतम !
सौरभका लेश नहीं इसमें है शेष कहींपर भी प्रियतम !
कैसे निर्णय अब करूँ भ्रमित थी हुई, सत्य ही या प्रियतम !
नीले अंगोंकी वह सुगन्ध अप्रतिम मिल गयी थी प्रियतम !४६!

कालेको छूकर मन मेरा हो गया निपट काला प्रियतम !
कुछ भी संकल्प करूँ, काला होकर वह निकलेगा प्रियतम !
यह असित रंग घन-घनतर अब होगा क्रमशः आगे प्रियतम !
है अतः अनन्तकाल तक ही जीवित रहकर रोना प्रियतम !५०!

रो-रोकर अहो निरन्तर मैं कालेमें बदल गयी प्रियतम !
पल्लवका तल्प साथ ही वह काला हो गया भला प्रियतम !
वे पत्र निकुंजवल्लियोंके काले हो गए सभी प्रियतम !
उस कुंजस्थलका कण-कण ही काला-काला अब है प्रियतम !५१!

बंकिम चितवन, बंकिम सुकण्ठ, बंकिम कटिकी झाँकी प्रियतम !
जिस तरुके अन्तरालसे थी, वह अन्तिम बार हुई प्रियतम !
आगे अत्यंत सघन वन था दृग देख न सकते थे प्रियतम !
वे सभी सदाके लिए यहाँ काले हो गए अहो प्रियतम !५२!

होगयी सारा परिणत जीवन सर्वथा मरुस्थलमें प्रियतम।
सौरभका लेश नहीं इसमें है शेष कहीं पर भी प्रियतम॥
कैसे निर्णय अब करूँ भ्रमित थी हुई, मनकी या प्रियतम।
नीले कुंजोंकी वह सुगन्ध अप्रतिम मिल गयी थी प्रियतम॥

कालेको छूकर मन मेरा होगया निपट काला प्रियतम।
कुछ भी संकल्प करूँ, काला होकर वह निकलेगा प्रियतम॥
यह अमित रंग चमचमाकर अब होगा कब आगे प्रियतम।
है अतः अनन्तकाल तक ही जीवित रहकर रोना प्रियतम॥

रो रो कर अहो निकुञ्ज मैं कालेमें बदल गयी प्रियतम।
पल्लवका तल्प साथ ही वह काला होगया भला प्रियतम॥
वे पत्र निकुञ्जवल्लियोंके काले होगये सभी प्रियतम।
उस कुञ्जस्थलका कण कण ही काला काला अब है प्रियतम॥

बंकिम चितवन, बंकिम मुकुट, बंकिम कटिकी झाँकी प्रियतम।
जिस नखके अन्तरालसे थी, वह अन्तिमबार हुई प्रियतम॥
आगे अत्यन्त सघन वन था दृग देख न सकते थे प्रियतम।
वे सभी सदाके लिये यहाँ काले होगये अहो प्रियतम॥

वह तुंग शैल गोवर्धनके जिसपर वे खड़े हुए प्रियतम !
जानेसे एक दिवस पहले लेकर दुकूल पीला प्रियतम !
फहरा फहरा करके गोधन एकत्र कर रहे थे प्रियतम !
रत्नोंकी ज्योति गयी वह भी कालेमें लीन हुआ प्रियतम !५३!

मेरे दृगकी भी ज्योति गयी कालेमें समा गयी प्रियतम !
कैसे समझूँ है प्राची यह, या दिशा प्रतीचीकी प्रियतम !
हे सर्वनियन्ता! तुमसे यह मैं भीख माँगती हूँ प्रियतम !
दिग्भ्रममें भी मैं पैर रखूँ, जिस ओर चाहती हूँ प्रियतम !५४!

वह देश दूर है आज जहाँ मेरे प्राणाधिक हैं प्रियतम !
उससे विपरीत दिशामें ही मैं भाग चलूँ अब तो प्रियतम !
है तापमान इन साँसोंका प्रतिपल बढ़ता जाता प्रियतम !
इनकी गरमी न लगे, जिससे उस नील कलेवरको प्रियतम !५५!

अलिकुल गुन-गुन करता था क्यों मेरे पीछे वे थे प्रियतम !
वे चले गये अतएव देह यह सड़ी-गली अब है प्रियतम !
यह गन्धवाह इसलिये यहाँ निश्चय कपूय होगा प्रियतम !
मैं चलूँ और भी दूर गन्ध उनके न पास पहुँचे प्रियतम !५६!

वह तुङ्ग शैल गोवर्धन के जिस पर वे खड़े हुए प्रियतम।
जाने से एक दिवस पहले लेकर दुकूल पीला प्रियतम॥
कतरा कतरा करके गोधन एकत्र कर रहे थे प्रियतम।
रत्नों की ज्योति गयी वह भी काले में लीन हुआ प्रियतम॥

मेरे दृग की भी ज्योति गयी काले में समा गयी प्रियतम।
कैसे समझूँ है प्राची यह, या दिशा प्रतीची की प्रियतम॥
हे सर्वनियन्ता! तुमसे यह मैं भीख माँगती हूँ प्रियतम।
दिग्भ्रम में भी मैं पैर रखूँ, किस ओर चाहती हूँ प्रियतम॥

वह देश दूर है आज जहाँ मेरे प्राणाधिक हैं प्रियतम।
उससे विपरीत दिशा में ही मैं भग चलूँ अब तो प्रियतम॥
है तापमान इन साँसों का प्रतिपल बढ़ता जाता प्रियतम।
इनकी गर्मी न लगे, जिससे उस नील कलेवर को प्रियतम॥

अलिकुल गुनगुन करता था ज्यों मेरे पीछे वे थे प्रियतम।
वे चले गये अतएव देह यह सड़ी-गली अब है प्रियतम॥
यह गन्धवाह इसलिये वहाँ निश्चय कुरूप होगा प्रियतम।
मैं चलूँ और भी दूर गन्ध उनके न पास पहुँचे प्रियतम॥

मैं नहीं मरूँगी कभी, सत्य यह है त्रिकाल, फिर भी प्रियतम !
यह तन तो सदा जलेगा ही काली उन लपटोंमें प्रियतम !
फैलेगी धूम राशि नभमें मैं इतनी दूर चलूँ प्रियतम !
धूआँ लाकर पंकिल न बनें वे दृग सरोज-दल-से प्रियतम !५७!

है पता नहीं इस समय वहाँ वे क्या करते होंगे प्रियतम !
चंचल उनका स्वभाव कैसे मिट गया अभी होगा प्रियतम !
वे पुष्प चयन करके गुम्फित कर रहे हार ही हों प्रियतम !
दे भुजा किसीकी ग्रीवामें अथवा हों झूल रहे प्रियतम !५८!

किसलयकी शय्या प्रस्तुत कर उत्कंठित आँखोंसे प्रियतम !
गिरवरके पार, बाट या हों मेरी ही देख रहे प्रियतम !
है किन्तु पिशाची आशा यह ठग रही पुनः मुझको प्रियतम !
जाते ही क्यों जो सुख मिलता उनको इस दासीसे प्रियतम !५९!

मैं हाय! किन्तु साँवर उनके प्रस्वेद भरे मुखको प्रियतम !
भूलूँ किस भाँति चित्त जिससे प्रतिचित्रित हो न वहाँ प्रियतम !
होगा वह निस्सन्देह नील परिपूरित, आहोंसे प्रियतम !
धू-धूकर तनके जलनेकी ज्वालाएँ लिए हुए प्रियतम !६०!

मैं नहीं मरूँगी कभी, सत्य यह है त्रिकाल, फिर भी प्रियतम।
यह तन तो सदा जलेगा ही काली उन लपटों में प्रियतम।।
फैलेगी धूम राशि नभ में मैं इतनी दूर चलूँ प्रियतम।
धूआँ लाकर पङ्किल न करें वे दृग सरोज-दल-से प्रियतम।।

है पता नहीं इस समय वहाँ वे क्या करते होंगे प्रियतम।
चञ्चल उनका स्वभाव कैसे फिर गया अभी होगा प्रियतम।।
वे पुष्प चयन करके गुम्फित कर रहे हार ही हों प्रियतम।
दे भुजा किसी की ग्रीवा में अथवा हों झूल रहे प्रियतम।।

किसलय की शय्या प्रस्तुत कर उत्कंठित आँखों से प्रियतम।
गिरवर के पार, बाट या हों मेरी ही देख रहे प्रियतम।।
है किन्तु पिशाची आशा यह भगा रही पुनः मुझको प्रियतम।
जाते ही क्यों जो सुख मिलता उनको इस दासी से प्रियतम।।

मैं हाय! किंतु सोकर उनके प्रस्वेद भरे मुख को प्रियतम।
भूलूँ किस भाँति चित्त जिससे प्रतिबिम्बित हो न वहाँ प्रियतम।।
होगा वह निस्सन्देह नील परिपूरित, धारों से प्रियतम।
चू चू कर तन के जलने की ज्वालाएँ लिये हुए प्रियतम।।

छू गये कहीं क्षणभर भी वे इस मनकी किरणोंसे प्रियतम !
काननसे पार गये उनका सब रस फीका होगा प्रियतम !
वानीर कुंजकी वे बातें हृत्तलमें जागेंगी प्रियतम !
वे खिली हुई उरकी कलियाँ कुम्हला कर झर न पड़ें प्रियतम !६१!

कोई-सा प्रबल सुकृत मेरा उनके बलसे जागे प्रियतम !
जाऊँ मैं भूल सत्य उनको, इसके अतिरिक्त भले प्रियतम !
कुछ भी कर लूँ यह मन उनमें प्रतिबिम्ब नहीं डाले प्रियतम !
है शक्य नहीं यह तो चाहे मैं कहीं चली जाऊँ प्रियतम !६२!

धिक्कार अनन्तकाल तक है प्रतिपल शत-शत मुझको प्रियतम !
मेरा मन बना विघातक है जीवन धनके सुखका प्रियतम !
रोकर भी मैं सुखिया रहती सुखमें यदि वे होते प्रियतम !
मेरी यह याद किंतु उनको हरदम पीड़ा देगी प्रियतम !६३!

अच्छा, मैं एक उपाय करूँ वे श्याम मनोहर हैं प्रियतम !
इतनी-सी याद सही-झूठी अबतक है बनी हुई प्रियतम !
मैं गढ़ूँ एक प्रतिमा सुन्दर मानसी बालिकाकी प्रियतम !
उन-से ही कृष्ण सलोने मुख-कर-पद-अंगों वाली प्रियतम !६४!

रह गये कहीं क्षण भर भी वे इस मन की किरनों से प्रियतम।
कानन से पार गये उनका सब रस फीका होगा प्रियतम॥
वानीर कुञ्ज की वे बातें हृत्तल में जलेंगी प्रियतम।
वे खिली हुई उर की कलियाँ कुम्हला कर झर न पड़ें प्रियतम॥

कोई-सा प्रबल सुकृत मेरा उनके बल से जागे प्रियतम।
जाऊँ मैं भूल सत्य उनको, इसके अतिरिक्त भले प्रियतम।
कुछ भी कर लूँ यह मन उनमें प्रतिबिम्ब नहीं डाले प्रियतम॥
है शक्य नहीं यह तो चाहे मैं कहीं चली जाऊँ प्रियतम॥

धिक्कार अनन्तकाल तक है प्रतिपल शत शत मुझको प्रियतम।
मेरा मन बना विघातक है जीवनधन के सुख का प्रियतम॥
होकर भी मैं सुखिया रहती सुख में यदि वे होते प्रियतम।
मेरी यह याद किंतु उनको हरदम पीड़ा देगी प्रियतम॥

अच्छा, मैं एक उपाय करूँ वे श्याम मनोहर हैं प्रियतम।
इतनी-सी याद सही-झूठी अबतक है बनी हुई प्रियतम।
मैं गढ़ूँ एक प्रतिमा सुन्दर मानसी बालिका की प्रियतम।
उन-से ही कृष्ण सलोने मुख-कर-पद-अंगों वाली प्रियतम॥

उसके परिधान सभी होंगे उनके समान पीले प्रियतम !
भूषित वनमालासे प्रतिदिन कर दूँगी मैं उसको प्रियतम !
मेरे प्राणोंकी चेतनता उसमें पूरित होगी प्रियतम !
होगी वह नित्य बहिन मेरी, प्राणोंमें बसी हुई प्रियतम !६५!

उनका स्वभाव अप्रतिम शील उसमें भर दूँगी मैं प्रियतम !
अनुगमन करेगी छाया-सी एकत्व किये मुझसे प्रियतम !
देखूँ मैं उसे, न देखूँ वह देखेगी मुझको ही प्रियतम !
उसके जीवनका अवलम्बन मैं ही बन जाऊँगी प्रियतम !६६!

उसको फिर मैं वंशीमें स्वर भरना सिखलाऊँगी प्रियतम !
बतला न भले पाऊँ अनन्त उन राग लहरियोंको प्रियतम !
कल्याण-साँझवाले स्वरको हृदयंगम कर लेगी प्रियतम !
जो प्रिय अत्यन्त नाम मेरा उनको था, गा लेगी प्रियतम !६७!

उसमें ही चित्त फँसाऊँगी प्रतिपल हँस-हँस करके प्रियतम !
देखूँ इस भाँति भूल पाऊँ दुःसह वेदना कहीं प्रियतम !!
मेरा प्रसन्न मन फिर उनमें प्रतिभात लगे होने प्रियतम !
निश्चिन्त सोचकर वे हों यह कि किंकिरी न दुखिया है प्रियतम !६८!

उसके परिधान सभी होंगे उनके समान पीले प्रियतम।
भूषित वनमाला से प्रतिदिन कर दूँगी मैं उसको प्रियतम॥
मेरे प्राणों की चेतनता उसमें पूरित होगी प्रियतम।
होगी वह नित्य बहिन मेरी, प्राणों में बसी हुई प्रियतम॥

उनका स्वभाव अप्रतिम शील उसमें भर दूँगी मैं प्रियतम।
अनुगमन करेगी छाया-सी एकत्व किये मुझसे प्रियतम॥
देखूँ मैं उसे, न देखूँ वह देखेगी मुझको ही प्रियतम।
उसके जीवन का अवलम्बन मैं ही बन जाऊँगी प्रियतम॥

उसको फिर मैं वंशी में स्वर भरना सिखलाऊँगी प्रियतम।
बालक न भले पाऊँ स्पन्दन उन राग-लहरियों को प्रियतम॥
कल्याण-साँझ वाले स्वर को हृदयङ्गम कर लेगी प्रियतम।
जो प्रिय अत्यन्त नाम मेरा उनको था, गा लेगी प्रियतम॥

उसमें ही चित्त फँसाऊँगी प्रतिपल हँस हँस करके प्रियतम।
देखूँ इस भाँति भूल पाऊँ दुःसह वेदना कहीं प्रियतम॥
मेरा प्रसन्न मन फिर उनमें प्रतिभात लगे होने प्रियतम।
निश्चिन्त सोचकर वे हों यह किं किरी न दुखिया है प्रियतम॥

उसके दिन सुखसे कटते हैं भूली-सी अब वह है प्रियतम !
संकल्प सदाके लिए मिटे उनका मैं लौट चलूँ प्रियतम !
जीवनकी साध मिले मुझको, हो जाएँ सुखी अब वे प्रियतम !
विस्मरण हुआ जो है मेरा, उनको चिरकाल रहे प्रियतम !६९!

पर कहीं स्व-सुखमें मत्त हुई कोई मधुपुर-रमणी प्रियतम !
लेकर भुजबन्धनमें उनको खोकर विवेक अपना प्रियतम !
कंकणका चिन्ह बना देगी उस नील मृदुल तनमें प्रियतम !
वे भले न जानें, पर अंकित होगी ही वह मुझमें प्रियतम !७०!

प्राणोंका क्रन्दन करुण तथा उस समय उठेगा ही प्रियतम !
अब कौन सँभाल करे साँवर तनकी इस चिन्तासे प्रियतम !
परिरम्भणका वह सुख तो सच अविलम्ब जले जिससे प्रियतम !
आयी न सावधानी इतनी मर्दित न नील तन हो प्रियतम !७१!

हैं परम उदार सुमधुर धीर अद्भुत वे रसदानी प्रियतम !
उनको कुछ भी हो जाय भले क्षत लगे स्याम तनमें प्रियतम !
वे तो निमग्न कर देंगे ही उस सुधा-सरोवरमें प्रियतम !
जिसकी ही एक बूँदसे हैं निःसृत रतिनायक ही प्रियतम !७२!

उसने दिन मुझसे कहते हैं भूली-सी अब वह है प्रियतम।
संकल्प सदाके लिये फिरे उनका मैं लौट चलूँ प्रियतम॥
जीवनकी साध मिले मुझको, हो जायँ सुखी अब वे प्रियतम।
विस्मरण हुआ जो है मेरा, उनको चिरकाल रहे प्रियतम॥

पर कहीं स्व-सुखमें मग्न हुई कोई मधुपुर-रमणी प्रियतम।
लेकर भुजबन्धनमें उनको खोकर विवेक अपना प्रियतम॥
कंकणका चिह्न बना देगी उस नील मृदुल तनमें प्रियतम।
वे भले न जानें, पर अंकित होगी ही वह मुझमें प्रियतम॥

प्राणोंका कदन ऋण तथा उस समय उठेगा ही प्रियतम।
अब कौन सँभाल करे साँवर तनकी- इस चिन्ता से प्रियतम॥
परिरम्भणका वह सुख तो सच अविलम्ब जले जिससे प्रियतम।
आयी न सावधानी इतनी मर्दित न नील तन हो प्रियतम॥

हैं परम उदार सुमधुर धीर अद्भुत वे रसदानी प्रियतम।
उनको कुछ भी हो जाय भले क्षत लगे श्यामतनमें प्रियतम॥
वे तो निमग्न कर देंगे ही उस सुधा-सरोवर में प्रियतम।
जिसकी ही एक बूँद से हैं निःसृत रतिनायक ही प्रियतम॥

ऐसे अनमोल महामरकतमणि जो वे हैं मेरे प्रियतम !
उनका आदर करके अपने दृगमें रखनेवाली प्रियतम !
कोई तरुणी हो तभी भले मेरा मन फुल्ल बने प्रियतम !
अन्यथा रुलाऊँ मैं उनको जीना है इसीलिए प्रियतम !७३!

ऐसे जीवनसे अच्छा था अधमा इस दासीका प्रियतम !
अस्तित्व नहीं होता अनादि एकाकी वे रहते प्रियतम !
हूँ किन्तु गँवारी मैं क्या इन बातोंको समझ सकूँ प्रियतम !
क्या पता अधिक सुख होता हो रोनेमें हँसनेसे प्रियतम !७४!

अब कहाँ चलूँ, किससे पूछूँ, क्या करूँ अनाथा मैं प्रियतम !
वे ही जब चले गए, मुझपर अब कौन दया करके प्रियतम !
जलना था, जलती, पर उनकी पीड़ा न सही जाती प्रियतम !
देखो री हाय! हाय! वे तो रो रहे वहाँ पर हैं प्रियतम !७५!

रे हाय! हुए गीले उभरे श्यामल कपोल दोनों प्रियतम !
आयी-आयी, अर्बुद मेरे प्राणोंके हे स्वामी प्रियतम !
पौछूँगी अभी तुरंत अश्रु अपने ही हाथोंसे प्रियतम !
मानिनी कहाँ, सच हूँ तुमसे कर रही खेल मैं थी प्रियतम !७६!

ऐसे अनमोल महा मरकत मणि जो वे हैं मेरे प्रियतम।
उनका आदर करके अपने दृगमें रखनेवाली प्रियतम॥
कोई तरुणी हो तभी भले मेरा मन फुल्ल करे प्रियतम।
अन्यथा हलाऊँ मैं उनको जीना है इसीलिये प्रियतम॥

ऐसे जीवनसे अच्छा था अच्छा इस दासीका प्रियतम।
अस्तित्व नहीं होता अनादि एकाकी वे रहते प्रियतम॥
हूँ किंतु गँवारी मैं क्या इन बातों को समझ सकूँ प्रियतम।
क्या पता कदाचित् सुख होता हो रोने में हँसने से प्रियतम॥

अब कहाँ चलूँ, किससे पूछूँ, क्या करूँ अनाथा मैं प्रियतम।
वे ही जब चले गये, मुझपर अब कौन दया करें प्रियतम॥
जलना था, जलती, पर उनकी पीड़ा न सही जाती प्रियतम।
देखो ही हाय! हाय! वे तो रो रहे वहाँ पर हैं प्रियतम॥

रे हाय! हुए गीले उभरे श्यामल कपोल दोनों प्रियतम।
आयी आयी, अबुद्धि मेरे प्राणों के हे स्वामी प्रियतम॥
पोछूँगी अभी तुरंत अश्रु अपने ही हाथों से प्रियतम।
मानिनी कहाँ, सच हूँ तुमसे कर रही खेल मैं भी प्रियतम॥

प्रस्तर खण्डों का काँटों का गह्वर पूरित वन था प्रियतम !
कोई पथ पगडंडीका भी मैं देख न पाती थी प्रियतम !
सूनापन था, गड़गड़ रव था युगपत् थी घोर निशा प्रियतम !
उसमें तुम थे जा छिपे तथा चिन्ता थी हुई मुझे प्रियतम !७७!

उन शत-शत नलिन दलोंकी मृदु शय्या वह दूर रहे प्रियतम !
अपनी इन नयन पुतरियोंकी जो सेज बनाऊँ मैं प्रियतम !
उसपर भी जब पधरानेमें तुमको सकुचाती हूँ प्रियतम !
कैसे न छिदेंगे वे दोनों पद इस मनमानीसे प्रियतम !७८!

शासन करनेकी वृत्ति जगी जिससे तुम डर जाओ प्रियतम !
क्षणभरके लिए भले पर रस-निर्झर ही रुद्ध हुआ प्रियतम !
साहस न कभी तुममें आए इस भाँति भागनेका प्रियतम !
निर्भय हो सत्य निकुंजपति अब होंगे न चपल ऐसे प्रियतम !७९!

रोने लग जाओगे तुम जो यह बात जानती मैं प्रियतम !
कोई दूसरा उपाय सरस करती समझानेका प्रियतम !
अनुरक्ति अहो इस ममतापर बलिहार हुई पहुँची प्रियतम !
इतना कहकर फिर अट्टहास करके बोली वह थी प्रियतम !८०!

प्रस्तर खण्डोंका काँटोंका गह्वर पूरित वन था प्रियतम।
कोई पथ पगडंडीका भी मैं देख न पाती थी प्रियतम।।
सूनापन था, गड़गड़ रव था कुत्सित भी घोर निशा प्रियतम।
उसमें तुम थे जा छिपे तथा चिन्ता थी हुई मुझे प्रियतम।।

उन शत शत नलिन दलोंकी मृदु शय्या वह दूर रहे प्रियतम।
अपनी इन नयनपुतरियोंकी जो सेज बनाऊँ मैं प्रियतम।।
उसपर भी जब पधरानेमें तुमको सकुचाती हूँ प्रियतम।।
कैसे न छिदेंगे वे दोनों पद इस मनमानीसे प्रियतम।।

शासन करनेकी वृत्ति जगी जिससे तुम डर जाओ प्रियतम।
क्षणभरके लिये भले पर रस-निर्झर ही रुद्ध हुआ प्रियतम।।
साहस न कभी तुममें आये इस भाँति भागनेका प्रियतम।
निर्भय हों सब निकुञ्ज पति अब होंगे न चपल ऐसे प्रियतम।।

रोने लग जाओगे तुम जो यह बात जानती मैं प्रियतम।
कोई दूसरा उपाय तब करती समझानेका प्रियतम।
अनुरक्ति भरी इस ममता पर बलिहार हुई पहुँची प्रियतम।
इतना कह कर फिर अट्टहास करके बोली वह भी प्रियतम।।

दो टूक हुआ आकाश मिटी वह नभस्वान सत्ता प्रियतम !
है समा गया सब कुछ तो ही फटनेके उस रवमें प्रियतम !
मैं भी अब चली, गई कलना, है प्रकृति नहीं, चिति है प्रियतम !
हूँ महाप्रलयके पार अहा! क्रन्दन कि हास यह है प्रियतम !८१!

उस तरुणीके तनका कण-कण इतनेमें बिखर गया प्रियतम !
पिंगलता अतुल उरस्थलकी, तनकी कृष्णता तथा प्रियतम !
परिपूरित थी प्रत्येक दिव्य, उड़ते-से उस कणमें प्रियतम !
प्रत्येक, और हो गया लीन तुम दोनोंकी द्युतिमें प्रियतम !८२!

इस भाँति अकूल रसोदधिके निरुपम उद्वेलनमें प्रियतम !
जो अहो स्वरूपविलास नित्य तुम लीलामयका है प्रियतम !
है काल न, जहाँ प्रतिष्ठित है जो अपनी महिमामें प्रियतम !
मज्जन कर तुम जग उठे, जगी प्राणोंकी वह देवी प्रियतम !८३!

तुम दोनोंकी अनुभूति एक थी आदि अंत तककी प्रियतम !
पर बड़े मर्मका अतुल सरस अन्तर था इतना-सा प्रियतम !
तुम कहते थे प्रियतमे! श्याम उर था वह गोरी थी प्रियतम !
थी उक्ति वल्लभाकी श्यामा वह थी उर था गोरा प्रियतम !८४!

दो टूक हुआ आकाश फिरी वह नभस्थान लगा प्रियतम।
है समा गया सब कुछ तो ही फटने के उस रव में प्रियतम॥
मैं भी अब चली, गई कल्पना, हे प्रकृति नहीं चिति है प्रियतम।
हूँ महाप्रलय के पार अहा! क्रन्दन कि हास यह है प्रियतम॥

उस तरुणी के तन का कण कण इतने में बिखर गया प्रियतम।
पिंगल अतुल उरस्थल की, तन की कृष्णता तथा प्रियतम॥
परिपूरित थी प्रत्येक दिशा, उड़ते-से उस कण में प्रियतम।
प्रत्येक, और हो गया लीन तुम दोनों की द्युति में प्रियतम॥

इस भाँति अपूर्व सौन्दर्य के निरुपम उद्वेलन में प्रियतम।
जो अहो स्वच्छन्द विलास नित्य तुम लीलामय का है प्रियतम॥
है काल न, जहाँ प्रतिष्ठित है जो अपनी महिमा में प्रियतम।
मज्जन कर तुम जग उठे, जगी प्राणों की वह देवी प्रियतम॥

तुम दोनों की अनुभूति एक थी आदि अंत तक की प्रियतम।
पर बड़े मर्म का अतुल सरस अन्तर था इतना-सा प्रियतम॥
तुम कहते थे प्रियतमे! श्याम उर था वह गोरी थी प्रियतम।
थी उक्ति वल्लभा की श्यामा वह थी उर था गोरा प्रियतम॥

यह महाभावमय गीत नहीं है सुना किसीने भी प्रियतम !
प्रायः विहंग विहगी-दल इस काननके मोहित हैं प्रियतम !
हैं व्यस्त मदनके दर्शनमें, दाना बटोरनेमें प्रियतम !
चें-चें कर अहो! परस्पर फिर उड़-उड़ कर लड़नेमें प्रियतम !८५!

है किन्तु अहो यह भी लीला तुम जीवनधनकी ही प्रियतम !
चालक तुम हो, सब पुतली हैं, मलिना अवश्य मैं हूँ प्रियतम !
है प्रिय तथापि मेरी वाणी तुमको, स्वरूपसे हो प्रियतम !
अद्‌भुत अदोष-दर्शी तुम जो, विह्वल हो जाते हो प्रियतम !८६!

क्यों सुने, धरा क्या है इसमें, यह बुद्धि लिए जो हैं प्रियतम !
गाती थी मैं, सुनते थे तुम, गाती हूँ तुम सुन लो प्रियतम !
हैं कहते उपसंहार जिसे वह किंतु उपक्रमके प्रियतम !
अनुरूप बने, है नियम यही, अतएव यही अब हो प्रियतम !८७!

उन आठ मनोहर गीतोंकी सूची रच देती हूँ प्रियतम !
जो हैं उस पिंजरकी छाया छिति-तल पर पड़ी हुई प्रियतम !
तुम नित्य यशोदा उदरस्थल-सागरसे प्रकट हुए प्रियतम !
शशधरके शुभ्र चाँदनीमें उसके हिल जानेसे प्रियतम !८८!

यह महाभावमय गीत नहीं है सुना किसीने भी प्रियतम।
प्रायः विहंग-विहगी-दल इस काननके मोहित हैं प्रियतम॥

हैं व्यस्त मदनके दर्शनमें, दाना बटोरनेमें प्रियतम।
चें चें कर अहो! परस्पर फिर उड़-उड़कर लड़नेमें प्रियतम॥

है किन्तु अहो यह भी लीला तुम जीवनधनकी ही प्रियतम।
चालक तुम हो, सब पुतली हैं, मलिना अबला मैं हूँ प्रियतम॥
है प्रिय तथापि मेरी वाणी तुमको, स्वरूपसे हो प्रियतम।
अद्भुत अदोष-दर्शी तुम जो, विह्वल हो जाते हो प्रियतम॥

क्यों सुने, धरा क्या है इसमें, यह बुद्धि लिये जो हैं प्रियतम।
गाती थी मैं, सुनते थे तुम, गाती हूँ तुम सुन लो प्रियतम॥
हैं कहते उपसंहार जिसे वह किंतु उपक्रमके प्रियतम।
अनुरूप बने, है नियम यही, अतएव यही अब हो प्रियतम॥

उन आठ मनोहर गीतोंकी सूची रच देती हूँ प्रियतम।
जो हैं उस पिंगलकी छाया छिति-तल पर पड़ी हुई प्रियतम॥
तुम नित्य यशोदा उदर कमल-सागर से प्रगट हुए प्रियतम।
शशधरकी शुभ्र चाँदनीमें उसके हिल जाते हो प्रियतम॥

अर्चन करने मैं बैठी थी सन्मुख मेरे तुम थे प्रियतम !
तुम पर थी फूल चढ़ाती, पर पिंजरपर चढ़ जाता प्रियतम !
इस भाँति अनेक बार जब था दीखा, चकराई मैं प्रियतम !
तुमने समझाया तभी मर्म इसका मैं समझ सकी प्रियतम !८६!

विहगीसे मैं थी रमणीमें परिणत हो गयी अहो प्रियतम !
क्षण एक अभी पहले जो था पिंजड़ा वह भी बदला प्रियतम !
षोड़शी सुन्दरी बाला थी अब वहाँ, और मैं थी प्रियतम !
उसके समीप, वह थी मेरी अलकें सज्जित करती प्रियतम !९०!

मेला था या बाजार इसे था कठिन समझ लेना प्रियतम !
अध्यस्त हो गयी मैं सहसा उस साधु-कलेवरमें प्रियतम !
अधिदेव नित्य पिंजरके तुम उसमें से थे निकले प्रियतम !
मुझको दिखला दी फिर सूची भावी उस लीलाकी प्रियतम !९१!

लेकर अपना ही नाम भला थी पूछ रही तुमसे प्रियतम !
है कहाँ महारस? तुम कहते पिंजर ही तो वह है प्रियतम !
अचरजमें पड़कर बार-बार थी दृष्टि डालती मैं प्रियतम !
आखिर वह भेद खुला रसमय वारीश उमड़ आया प्रियतम !९२!

अर्चन करते मैं बैठी थी सम्मुख मेरे तुम थे प्रियतम।
तुम पर थी फूल चढ़ाती, पर पिंजड़ पर चढ़ जाता प्रियतम॥
इस भाँति अनेक बार जब था दीखा, चकराई मैं प्रियतम।
तुमने समझाया तभी मर्म इसका मैं समझ सकी प्रियतम॥

विहगी से मैं भी रमणीमें परिणत हो गयी अहो प्रियतम।
क्षण एक अभी पहले जो था पिंजड़ा वह भी बदला प्रियतम॥
षोडशी सुन्दरी बाला थी अब वहाँ, और मैं भी प्रियतम।
उसके समीप, वह थी मेरी 'अलकें सज्जित करती प्रियतम॥

मेला था या बाजार इसे था कठिन समझ लेना प्रियतम।
अध्यस्त हो गयी मैं सहसा उस साधु-कलेवरमें प्रियतम॥
अधिदेव नित्य पिंजड़के तुम उसमें से थे निकले प्रियतम।
मुझको दिखला दी फिर पूरी झाँकी उस लीलाकी प्रियतम॥

लेकर अपना ही नाम भला थी पूछ रही तुमसे प्रियतम।
है कहाँ महाराज! तुम कहते पिंजड़ ही तो वह है प्रियतम॥
असमंजसमें पड़कर बार बार थी दृष्टि डालती मैं प्रियतम।
आखिर वह भेद खुला समय वागीश उतर आया प्रियतम॥

था देश मरुस्थलका, रजनी आधी थी बीत गयी प्रियतम !
चूरण पीताभ बालुकाका विस्तृत हो गया तथा प्रियतम !
मैं तो थी देख रही सपना, उस ओर सत्य ही थे प्रियतम !
आये तुम पिंजरसे जुड़कर शिव कथा कह रहे थे प्रियतम !६३!

जिस वनमें गाय चराते हो, मुरली मुखरित जो है प्रियतम !
उसके उन निभृत निकुंजोंके सर्वथा अगम थलमें प्रियतम !
जा सकूँ, अतुल वह शक्तिपात तुमने पिंजर-छड़से प्रियतम !
था किया, सदाके लिए मिटा भिखमंगीपन मेरा प्रियतम !६४!

वह नंदगाँवकी थी झाँकी प्रस्तरकी प्रतिमा थी प्रियतम !
पिंजरसे प्रतिमाका अभेद मुझको था दीख रहा प्रियतम !
आगे चलकर तुरंत तुमने बतलाया स्वयं मुझे प्रियतम !
पिंजर तुम उपलमयी प्रतिमा है एक वस्तु तीनों प्रियतम !६५!

उन सिद्धनाथके पत्तनमें बनियेके बालकका प्रियतम !
था पावन महाप्रयाण इधर हो रहा, उधर मैं थी प्रियतम !
पिंजरेके साथ खिसक आयी उस भाव-लता पर ही प्रियतम !
अत्यन्त दूर, फिर भी स्वर यह संवादी मिला दिया प्रियतम !६६!

था देश मरुस्थल का, रजनी आधी थी बीत गयी प्रियतम।
चूरण पीताभ बालुका का विस्तृत हो गया तथा प्रियतम।।
मैं तो थी देख रही सपना, उस ओर सत्य ही थे प्रियतम।
आये तुम पिंजरसे मुड़कर शिव कथा कह रहे थे प्रियतम।।

जिस वनमें गाय चराते हो, मुरली मुखरित जो है प्रियतम।
उसके उन निभृत निकुंजों के सर्वथा अगम थलमें प्रियतम।।
जानहूँ, अतुल वह शक्तिपात तुमने पिंजर-छुड़ाके प्रियतम।
था किया, सदा के लिये मिटा आवागमन मेरा प्रियतम।।

वह नंदगाँवकी थी झाँकी प्रभुकी प्रतिमा थी प्रियतम।
पिंजरसे प्रतिमा का अभेद मुझको था दीखरहा प्रियतम।
आगे चलकर तुरंत तुमने बतलाया स्वयं मुझे प्रियतम।
पिंजर तुम उपलमयी प्रतिमा है एक वस्तु तीनों प्रियतम।।

उन सिद्धनाथके पत्तनमें बनियेके बालक का प्रियतम।
था पावन महाप्रयाण स्फुर हो रहा, उधर मैं थी प्रियतम।।
पिंजरके साथ खिसक आयी उस भाव-लता पर ही प्रियतम।
अत्यन्त दूर, फिर भी स्वर यह संवादी मिला दिया प्रियतम।।

नैसर्गिक वत्सलताका रस कितना मीठा सच है प्रियतम !
जैसे पिंजरको कम्पित कर तुमने दिखलाया था प्रियतम !
उसका भी है इतिहास बड़ा सुन्दर शुभ सुखदायी प्रियतम !
है किंतु नहीं अवकाश यहाँ, फिर गोपनीय भी है प्रियतम !९७!

पिंजर काला प्रतीक यह है व्रजधरा अरण्य तथा प्रियतम !
सब मातृ-पितृ-कुलके परिकर वे श्वसुरालयके भी प्रियतम !
गोवंश वसन उपकरण सभी जनके तन धारणके प्रियतम !
सन्धिनी शक्तिकी परिणति ही जो हैं-इन सबका ही प्रियतम !९८!

क्या कहूँ तथा क्या नहीं कहूँ, मैं समझ नहीं पाती प्रियतम !
पिंजरको सरका-सरका कर लीला तुमने जो की प्रियतम !
लजवंती लतिका-सी अगणित अनुभूति-राशि वह है प्रियतम !
वाणी छू लेगी यदि उसको, सिकुड़ेगी ही वह तो प्रियतम !९९!

पिंजर परिसरमें पत्तनकी रचना तुमने की थी प्रियतम !
मेरी मनुहार मनोरंजन करनेके लिए भला प्रियतम !
वह अब भी है पर बसे हुए उसमें तुम ही थे, हो, प्रियतम !
वैसे ही देख रही हूँ मैं उसको, उसमें तुमको प्रियतम !१००!

नैसर्गिक वत्सलता का रस कितना मीठा सच है प्रियतम।
जैसे पिंजर को कम्पित कर तुमने दिखलाया था प्रियतम॥
उसका भी है इतिहास बड़ा सुन्दर शुभ सुखदायी प्रियतम।
है किन्तु नहीं अवकाश यहाँ, फिर गोपनीय भी है प्रियतम॥

पिंजर काला प्रतीक यह है व्रजधरा अरण्य तथा प्रियतम।
सब मातृ-पितृ-कुल के परीकर वे श्वशुरालय के भी प्रियतम॥
गोवंश वसन उपकरण सभी जनके तन धारण के प्रियतम।
सन्धिनी शक्ति की परिणति ही जो हैं- इन सबका ही प्रियतम॥

क्या कहूँ तथा क्या नहीं कहूँ, मैं समझ नहीं पाती प्रियतम।
पिंजर को सरका सरका कर लीला तुमने जो की प्रियतम॥
लज्जावती लतिका-सी अगणित अनुभूति-राशि वह है प्रियतम।
वाणी छू लेगी यदि उसको, सिकुड़ेगी ही वह तो प्रियतम॥

पिंजर पारस में पतन की रचना तुमने की थी प्रियतम।
मेरी मनुहार मनोरञ्जन करने के लिये भला प्रियतम॥
वह अब भी है पट बसे हुए उसमें तुम ही थे, हो, प्रियतम।
वैसे ही देख रही हूँ मैं उसको, उसमें तुमको प्रियतम॥

इन अगणित रूपोंमें मेरे सन्मुख आ आ करके प्रियतम !
जो प्यार दिया, देते हो, क्या संभव है कह देना प्रियतम !
आँखें ये सदा बनीं नीची लज्जा-कृतज्ञतासे प्रियतम !
रह जायँ और तुम पढ़ लो, है कितना बोझा इनमें प्रियतम !१०१!

आये विराम इस गाथाका इससे पहले तुमसे प्रियतम !
अपने मनकी वह बात तनिक जो नहीं यहाँ कह दूँ प्रियतम !
जो है लघु कुंजी-सी मेरे रसमय उस सागरकी प्रियतम !
हो जाय निरर्थक सब वर्णन, संकेत अतः सुन लो प्रियतम !१०२!

हो बने रामदेई माता मेरी तुम अभी यहाँ प्रियतम !
धरते न रूप यदि तुम ऐसा देते न बाँध फिर जो प्रियतम !
मुझ विहगीके पदको, अपनी ममताकी डोरीसे प्रियतम !
नीलमके इस पिंजड़ेमें थी आबद्ध, किंतु उड़ती प्रियतम !१०३!

लेकर सुंदर लट एक पुनः अपने कुंचित कचसे प्रियतम !
देकर फिर रूप उसे मेरी श्यामा भगिनीका हे प्रियतम !
दी पाँखें बाँध मृदुल उससे फड़-फड़ थीं जो करतीं प्रियतम !
ऐसी द्रुत गतिसे संभवतः जैसे वे टूट गिरें प्रियतम !१०४!

इन अगणित रूपों में मेरे सम्मुख आ आ करके प्रियतम।
जो प्यार दिया, देते हो, क्या संभव है कह देना प्रियतम॥
आँखें ये सदा बनीं नीची लज्जा-कृतज्ञता से प्रियतम।
रह जायें और तुम पढ़ लो, है कितना बोझा इनमें प्रियतम॥

आये विराम इस गाथा का इससे पहले तुमसे प्रियतम।
अपने मन की वह बात तनिक जो रही यहाँ कह दूँ प्रियतम॥
जो है लघु कुंजी-सी मेरे हृदय उस सागर की प्रियतम।
हो जाय निरर्थक सब वर्णन, संकेत अतः सुन लो प्रियतम॥

हो बने रामदेई माला मेरी तुम अभी यहाँ प्रियतम।
धरते न रूप यदि तुम ऐसा देते न बाँध फिर तो प्रियतम॥
मुझ विरजी के पद को, अपनी ममता की डोरी से प्रियतम।
नीलम के इस पिंजड़े में भी आबद्ध, किंतु उड़ती प्रियतम॥

लेकर सुंदर लट एक पुनः अपने कुञ्चित कच से प्रियतम।
देकर फिर रूप उसे मेरी श्यामा भगिनी का हे प्रियतम॥
दी पाँखें बाँध मृदुल उससे फड़-फड़ थीं जो करतीं प्रियतम।
ऐसी द्रुत गति से संभवतः जैसे वे टूट गिरें प्रियतम॥

होता न सुभाव कहीं मेरी भगिनीका तुम-सा ही प्रियतम !
थी पाँख भले बन्धनमें, पर उड़ जाते प्राण कभी प्रियतम !
हो दैव-दलित यदि रह जाते, नीरस हो जाते ये प्रियतम !
कैसे नहलाती मैं तुमको प्रतिपल नव-धारासे प्रियतम !१०५!

जो हो इन रूपोंमें तुमने, मुझसे है खेल किया प्रियतम !
ये रूप सभी प्राणोंसे हैं प्रिय अधिक अतः मुझको प्रियतम !
होकर वियोग इनका न कहीं पड़ जाय रंग फीका प्रियतम !
अतएव साथ लेकर ही मैं जाऊँगी इन सबको प्रियतम !१०६!

मैया तन्मय होगी दोनों दृगकी इन पुतरीमें प्रियतम !
जिनमें अनादि कालसे ही रहती यह दासी है प्रियतम !
मेरी यह बहिन मिलेगी आ तुममें फिर बेसरमें प्रियतम !
हम दोनोंकी, एवं पिंजड़ा नीली द्युतिमें वपुकी प्रियतम !१०७!

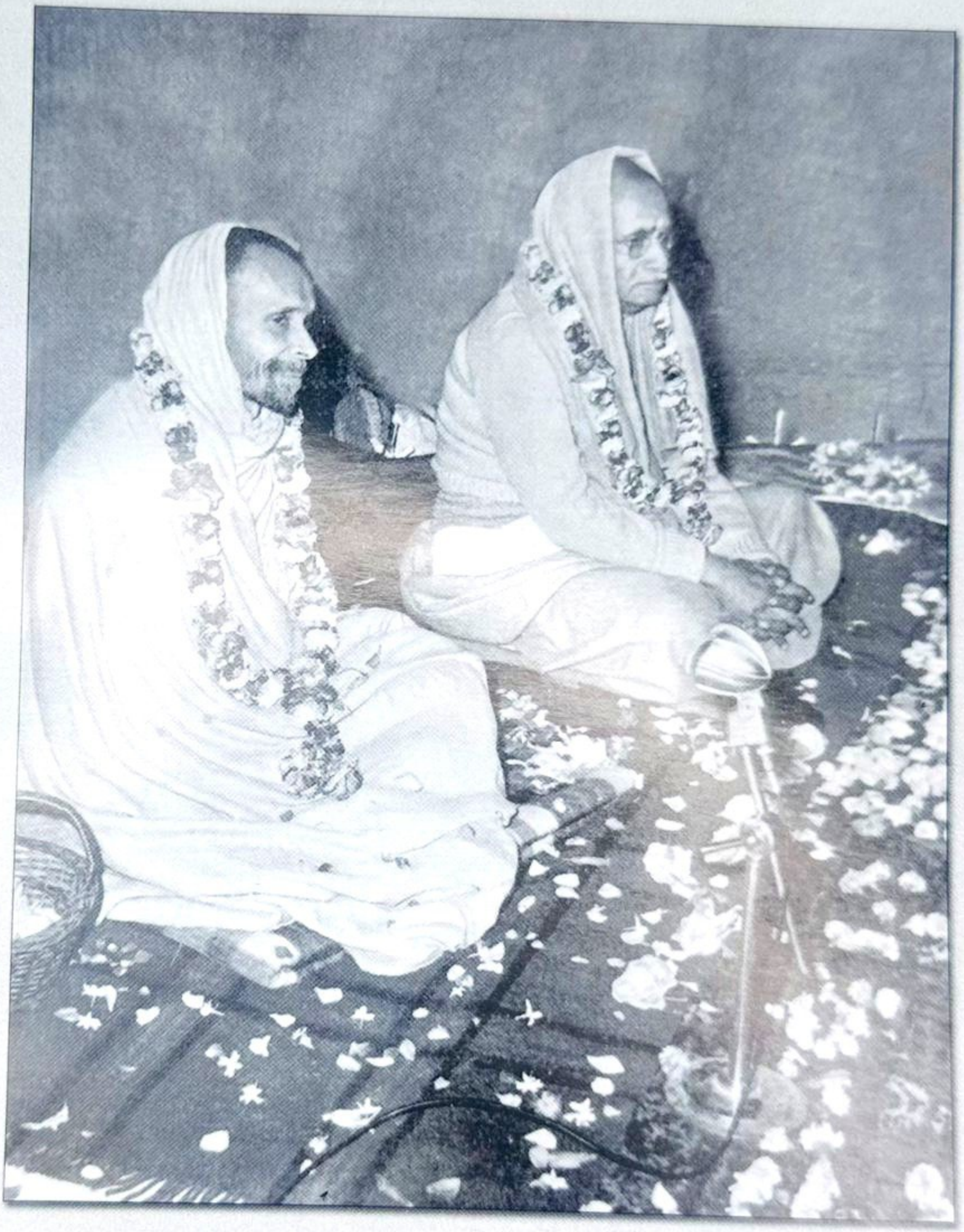
ये सुमन एक सौ आठ अहो तुम वंशीधारीकी प्रियतम !
पद-रजको छूकर अभिलाषा पावन पूरी कर दें प्रियतम !
उन नित्य शारदा गोपीकी पुत्रीकी छायासे प्रियतम !
भावित जो है यह बहिन रहेगी सदा जुड़ी तुमसे प्रियतम !१०८!

होता न प्रभाव कहीं मेरी भगिनी का तुम-सा ही प्रियतम।
थी पाँख भले बन्धनमें, पर उड़ जाते प्राण कभी प्रियतम॥
हो दैवदलित थारे रह जाते, नीरस हो जाते ये प्रियतम।
कैसे नहलाती मैं तुमको प्रतिपल नव-धारासे प्रियतम॥

जो हो इन रूपोंमें तुमने, मुझसे है खेल किया प्रियतम।
ये रूप सभी प्राणोंसे हैं प्रिय अधिक अतः मुझको प्रियतम॥
होकर वियोग इनका न कहीं पड़ जाय रंग फीका प्रियतम।
अतएव साथ लेकर ही मैं जाऊँगी इन सबको प्रियतम॥

मैया तन्मय होगी दोनों हाथकी इन पुतरीमें प्रियतम।
जिनमें अनादि कालसे ही रहती यह दासी है प्रियतम॥
मेरी यह बहिन मिलेगी आ तुममें फिर वेलामें प्रियतम।
हम दोनोंकी, एवं पिंजड़ा नीली स्मृतिमें बधुकी प्रियतम॥

ये सुमन एक सौ आठ अहो गुरु वंशीधारीकी प्रियतम।
पद-रजको छूकर अभिलाषा पावन पूरी करें प्रियतम॥
उन नित्यशरदा गोपीकी पुत्रीकी छायासे प्रियतम।
भावित जो है यह बहिन रहेगी सदा जुड़ी तुमसे प्रियतम॥



नीलम पिंजर : श्रीपोद्दारजी
नभचारिणी विहगी : श्रीराधाबाबा

शतक : भावार्थ

देखो, बाह्य दृष्टिसे नहीं अन्तर्दृष्टिसे दर्शन करो। यह निसर्गका नियम है, उद्वेलित प्रवाह पहले संगमित होता है सरितासे; और फिर वह समवेत धारा उमड़कर दौड़ पड़ती है प्राणधन उदधिसे प्राण-सम्मेलनके लिए। आतुर कंपति अविलम्ब आ जाता है परिरम्भणकी मुद्रामें; आनन्दातिरेकसे उठती उसकी उत्ताल तरंगें करने लगती हैं अपना उल्लास व्यक्त! भैया, यही सत्य संघटित होता है जब नीलसुन्दरकी तिरछी चितवनसे विद्ध किसी घायलकी आँखसे आँख मिल जाती है किसी बड़भागीकी, तब उसके नेत्रोंमें भी उसी चिन्मय ज्योतिका उन्मेष हो जाता है; और उस परम दिव्य आलोकमें श्रीकृष्णचन्द्रकी आत्मप्रकाश शक्तिसे प्रकाशित होता है अखिल विश्व। सम्मिलित उस दृष्टिमें व्यक्त होते हैं वे त्रिभुवन-जन-मनमोहन अपनी स्वेच्छानुरूप। दर्शन भी कराते हैं वे अन्य सम्पूर्ण दृश्य-प्रपंचका यथारुचि, प्रज्ञाकी परिधिसे बाहर रहती है वह स्थिति।

भैया, मैं ठहरा साधारण जागतिक प्राणी—अपनी गतिसे चल रहा था। न जाने क्यों और कैसे नीलमयंककी दृष्टिने मुझे बाँध लिया और प्रविष्ट हो गए वे मेरी इस मर्त्य कायामें..। अब इसकी गुणवत्ताका माप बन गए वे स्वयं...। अहंताके सारे द्वार सर्वथा रुद्ध कर, स्वशासित साम्राज्य स्थापित कर लिया और करने लगे स्वच्छन्द विचरण। अन्य द्रष्टा आगन्तुकोंमें ही गणना होने लगी मेरी स्वयं की भी, मैं भी खड़ा देखता रहता तमाशा। उसी क्रीड़ा-अवधिमें एक कौषेय वेशधारी साधु मेरे आवासपर पधारे..। गृहस्थ होनेके नाते मैं भी महात्माजीके दर्शन-अभिवादन-हेतु समीप गया। चरण स्पर्शकी अभिलाषासे झुककर मुंडित योगीके चरण-नखोंका स्पर्श किया। अरे, यह क्या? निमीलित नेत्र, तेजस्वी मुखमंडल, 'सोऽहं-सोऽहंके' जपमें तल्लीन संन्यासी मानो विद्युत्प्रवाहसे संस्पर्शित हो गए और पुकार उठे 'कृष्ण-कृष्ण'। वेदान्तकी उनकी गरिमा धूलि-धूसरित हो गई और 'है तत्त्व बताया तुमने ही, तुम ही तुम हो मेरे प्रियतम' की स्थितिमें निर्निमेष निहार रहे थे अब वे उसी दिशामें, जहाँ खड़ा था मैं। मैं भी

असमंजसकी स्थितिमें उनकी ओर देख रहा था–साथ ही दर्शन कर रहा था निकट ही खड़े अपने हृदयधनका, जो मुखपर मंद स्मित लिए त्रिभंग मुद्रामें अवस्थित अपने कौतुकका प्रभाव देख रहे थे। कट्टर वेदान्तीजीका तो स्वांग खराब कर ही दिया, मुझ अकिंचनका भी न जाने कौनसा स्वरूप दर्शन करा दियां महात्माजीको कि वे सबकुछ भूलकर रम गए उसीमें। अब उनका साध्य हो गया वह पुरट लता-संश्लिष्ट तमाल, लावण्याकार व्रजरसनिधि। आमूलचूल निमग्न हो गए वे व्रजरसमें, विस्मृत हो गया सम्पूर्ण वेदान्त।

'इस अप्रतिम कृपाका अधिकारी बना दिया मुझ नगण्य को उन्होंने'–इस आदर-भावनासे भावित उनके मानसने ग्रहण कर लिया मेरे इस पांचभौतिक शरीरको ही नित्य-धाम–और मन-ही-मन प्रतिज्ञाबद्ध हो गए वे इस देहपुरके साथ ही क्षेत्र संन्यासके लिए। यावज्जीवन मुझे श्याम मिलावनहार माननेकी भ्रान्ति, दूसरे शब्दोंमें मेरी सन्निधि ही बन गई उनकी साधना। उस मानसिकताके आवर्तोंमें नाचती भाव-ऊर्मियाँ ही मूर्त हैं इन १०८ पदोंमें–

'वसुधाकी उस भावभूमिके प्रति रजकणको नमन है, जहाँ वह इन्द्रनीलमणि विरचित, पक्षी स्वातंत्र्य विघातक पिंजरा शोभायमान हो रहा है। उसके नूतन प्रबल आकर्षणकी डोरमें बँधी उसे देखकर मोहित हो जानेके कारण उसका सामीप्य प्राप्त करने-हेतु ही तो वह विहंगिनी (मैं) नील गगनका परित्याग कर नीचे उतरी थी। कहाँ ज्ञात था उस क्षण उसे यह सत्य कि यह नीलिमा नीलचन्द्रदेवके श्रीअंगों का ही उपादान है–उसी नील देहका ही अंश है–उसे वहाँसे ग्रहण कर तुमने अपने हाथोंसे विहगीके लिए इस पिंजर- काराका निर्माण किया है।

असीम उस आकाशमें अपनी पाँखें फैलाए–अनवरत उड़ते-उड़ते वह श्रमित हो जाती थी–तुम तो अविराम उसके साथ रहते ही हो... स्मितानन रहकर क्रीड़ा भी करते हो। तुम भी बारंबार उससे अनुनय करते–'चलो! कहीं कुछ क्षण विश्राम कर लें, इससे श्रम समाहार हो जाएगा–फिर स्वच्छन्दतासे अधिक दूरी तय कर सकेंगे–।' परन्तु मेरा

तो स्वभाव चिर हठी ठहरा—उड़ान भरनेके सुखका त्याग मैं कर ही न सकी।

अत्यधिक थक जानेपर मैं व्याकुल-सी हो गई—मेरे प्राणरमणसे मेरा यह कष्ट देखा नहीं गया, वे अधीर हो उठे और सकल-कला-गुण-निधानने अपनी कुशलतासे नवीन नील-जालकी रचना कर दी क्षणभरमें ..। अकस्मात मुझ विहगीकी दृष्टि महिकी ओर गई—उस कृष्ण पिंजरके दृष्टिपथमें आते ही सम्पूर्ण स्वेच्छा-गतिका स्वयमेव अवरोध हो गया।

उन्मुक्त गगन-विहारिणी वह वेदान्ती-विहगी बद्ध हो गई कृष्णरस-पिंजरमें। कैसा अनजाना मोह आवृत कर बैठा उसे कि उस नीलम पिंजरकी नीलाभा ही बन गई उसका नासा-समीर। इसके पूर्व वह नील गगनमें विचरण करती, यदा-कदा धरित्रीकी ओर दृष्टिपात भी करती थी, परन्तु श्रमित होनेपर भी भूमिपर उतरना अभिप्रेत नहीं था उसे। उसके नित्य सहचर नीलमयंकने इसका समाधान निकाला इस पिंजर रूप देहमें उसकी आसक्ति सृष्ट कर। नील-पिंजरको देख, उसके सौन्दर्यसे आकर्षित होकर जब वह नीचे उतरी—तब तो उसकी परिक्रमा बन गया उसका स्वभाव और उसमें प्रवेश तो थी ही उसकी निश्चित नियति। अब सर्वथा बदल चुका था उसका जीवन। सम्पूर्णतया समाहित हो चुकी थी वह उस पिंजरमें। द्रुम-पत्रावलि आकर उसका स्पर्श करतीं—कानों-कानोंमें ही सब कुछ कह जातीं और चंचु-स्पर्शसे ही संदेश प्राप्त भी कर लेतीं। मलय समीर उस पथसे आकर अप्रतिम सौरभ अपने साथ समेटकर ले जाता। परन्तु वह चम्पक-उद्यान था, मधुलुब्ध चंचरीकका वहाँ प्रवेश नहीं हो पाता। मूक वार्ता होती रहती आधान और अधिवासिनीमें। उन तरु-पत्रोंपर अंकित लीला-लहरियोंके इतिवृत्तको एक दिन दिशाहीन उद्दाम पवन उड़ा ले चला, सम्भवतः (तुम्हें) रसराजको यह अभिप्रेत नहीं था, अतः कुछ पत्ते पंकमें गिरकर नष्ट हो गए, कुछ काँटोंकी झाड़ियोंमें जा पड़े और शेष हो गए स्वाहा दावानलमें।

सहसा भाव-विपर्ययकी आँधी, अंहकी झंझाने दिशाओंको धूमिल कर दिया। चतुर्दिक तिमिरसे आच्छन्न हो गया वातायन। क्षणार्धके लिए तो यह भ्रम हो गया कि

इन प्रबल झकोरोंसे कहीं यह आधार तत्त्व पिंजड़ा ही न उड़ जाए। और कदाचित यह हो गया तबतो वे सारे स्वप्न ध्वस्त हो ही जाएँगे–जिन्हें प्रतिपल मैं सरस-सरसतर अनुभव कर सँवारती रहती हूँ। महाप्रलयकी चिन्ताकी छाया मेरे मुखपर अंकित हो गई और पावसकी धारा बिखेरने लगीं मेरी आँखें। आँधीका वेग देखकर ही इस भयकी सृष्टि हो रही थी परन्तु लीलाविहारीके स्मितने व्योमको विमल-निर्मल बना दिया। अबतो रजनी आती, अंशुमाली अस्ताचलकी ओर जाते, उषा सिन्दूरी घट लिए उदीचीमें प्रकट होती, हेमन्त-शिशिर-ग्रीष्म-शरद-पावस-वसन्त आते-जाते..। निर्वापित उस स्थलमें नित्य नवीन अभिसन्धि लिए क्रीड़ा चलती रहती, जिसका वर्णन करने चलें तो न जाने कितने पुराणोंकी अवधारणा हो जायगी। साथ ही कौन अधिकारी है भी, जिसे सुनाया जा सके। फिर एक बात और जान लो–

जितना सम्भव हो मौन रहे, है रसकी परिपाटी प्रियतम

अतः मौन वह विहंगिनी अपने अप्रतिम प्यारकी गाथाको अपने उरस्थलमें ही समेटे रखती। उसे अपने अन्तस्तलमें गोपन किए ही जाना है, ले ही जाऊँगी। परन्तु जब रस-चर्चाके लिए प्रस्तुत हो ही गई हूँ तब ज्यों-की-त्यों न सही, कियदंश बदलकर ही वर्तमान एवं अतीतकी कुछ बात तो कह दूँ। म्लान, सर्वथा दीना, सशंकिता, भ्रमिता बुभुक्षिता विहगी उस पिंजरके समीप आकर उसका स्पर्श करती हुई पड़ जाती, और तब विह्वल होकर उसे हृदयसे लगा लेते प्राणसारसर्वस्व। अतुल रसिकता-सहित जीवनमूरि, प्राणेश्वरी आदि नामोंसे मुझे अभिहित करनेवाले, मेरे पद-गौरवकी स्मृति मुझे अपने वाग्विलाससे दिलाने लगते... उन संकेतोंका स्पर्श उन्मादिनी बना देता था मुझे। पलभर पूर्व ही मैंने उस पिंजर-परिसरमें प्रवेश किया था–उस रागपूरित कालिमाके वृत्तका स्पर्श होते-न-होते सम्पूर्ण अंगोंमें पुलकका सृजन हो गया।

आश्विन शुक्ला द्वादशीकी घटना है यह–परन्तु तेईस वर्ष पूर्वकी यह स्थिति मुझे आज भी ज्यों-की-त्यों दीख रही है। मेरे अनथक प्रयाससे भी इसमें कथमपि कियमपि परिवर्तन मैं न ला सकी।

वह प्रीति-विरहिता स्थिति खिन्नताका सृजन करती रहती और पिंजरको थामे रो पड़ती खगिनी। परन्तु उस पिंजरका स्पर्श-उसकी नीलिमाका संस्पर्श उसे अपने वास्तविक स्वरूपकी स्मृति दिला देता। अपने नित्य देशका चिर-परिचित वातावरण नित्य प्रेमास्पदकी उन्मद अंग-गन्धसे मत्त-सी हो रहती थी वह अपने उसी आनन्दमें। सहज औदार्यवश, स्वभाववश-सुमिष्ट फलको चंचु लगाकर छोड़ देना पक्षीका स्वभाव है-उस मिठासका आस्वादन ले सकें सब-यही उसका सुख है। श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें भी कहा जाता है-'शुक मुखाद्'-परन्तु विहगीका दुर्भाग्य-उसकी चंचु-स्पर्शके इंगित-दानको कोई न समझ सका, कोई समीप आकर झाँका भी तो आस्वादनको आघ्राण और आघ्राणको आस्वादन ही अनुभव कर सका। स्वाद, घ्राण सब दैहिक धरातलपर ही सम्भव थे उस स्तरके लिए। चरितार्थ थी पुरातन उक्ति-

करि फुलैलको आचमन मीठो कहति सराहि।
रे गंधी, मतिमंद तू इतर दिखावत काहि।।

खिन्ना पक्षिणीने अनेक बार प्रयास किया परन्तु असफल ही रही; न कोई पिंजरका इतिवृत्त सुननेको आया और न ही कोई सुननेवाला मिला पिंजरके प्रति विहगीकी वर्धमान आसक्ति-कथाको।

विहगीके जीवनमें ६-१० बार इस तरहके दृश्य उपस्थित हुए, जिससे वह व्यथित हो उठी ... और कुछ भी कहने-समझानेकी उसकी प्रवृत्ति समाप्त हो गई। वाग्वादिनीने विराम ले लिया।

कोई मर्मज्ञ हो, इसे समझ सके तो समझ ले, इससे अधिक कुछ प्रकाश दे सकना अब सम्भव नहीं। उस २६ प्रहरकी सरस-विरस युग्म भावोंकी समल-विमल प्रवाहिणीकी चर्चाके कूलका स्पर्श करते हुए अब बायीं ओर मुड़ जाती हूँ।

जीवन न जाने कब और कैसे क्या था, और क्या हो गया? ज्ञानकी सम्पूर्ण आलोक-रश्मियाँ इस नीली कल्लोलिनीके जलमें प्रविष्ट हो गईं-उनका अस्तित्व ही समाप्त हो गया-और अहर्निश उस पिंजरके प्रति आसक्ति उत्तरोत्तर वर्धमान हो उठी।

उसके अतिरिक्त अन्य कोई ममताका बिन्दु रहा ही नहीं–परन्तु हायरे! मेरी इस प्रीति-कथाको सुननेवाली, सुननेवाला कोई मुझे मिला ही नहीं। किसे सुनाऊँ? कौन सुने?.. अस्तु,

पुनः एक मधुपूरित कालविशेषके आगमनपर तुमने एक नवीन मायाका विस्तार किया। चित्रपटके अधरोंकी आड़ लेकर तुमने नवीन रस-संयोजन किया। 'ग्वालिनी प्रकट्यौ पूरन नेह' मात्र पद न रहकर सर्वथा-सर्वांशमें मूर्त हो गया मेरे जीवनमें। जगतके लिए नहीं अपितु स्वयं खगिनीके उरस्थलपर प्राकट्य हो गया उसका।

विशुद्ध ज्ञान और शुचितम रसके तोरण द्वय उद्भासित हैं–एक पर पार्थ सारथी अच्युतका रथ अंकित है और दूसरेपर व्यक्त है रसपुंगव हरितगात्र विहगवर। ऐसी प्रतीति होती है मानो यह राग और ज्ञानका संधि-स्थल है–यहाँ संगम होता है दो विशुद्ध सत्त्वमयी धाराओंका। इस ओर दृश्यमान प्रपंच जगतका और दूसरी दिशामें सीमाविहीन तूर्य रस-सागरका। 'दधि भाजन सिर पै लिए री, कहत गुपालहिं लेहु' की गुहार अब उसके अन्तस्तलमें, नयनोंमें उसकी सम्पूर्ण अहंतापर अधिकार कर बैठी... उस अनुराग-रागकी तान छेड़ने लगा उसका कण-कण, सम्पूर्ण अस्तित्व।

ज्ञान और राग दोनों तरु-तोरणके मध्य लिपटी भाव-वल्लरीपर यह पिंजरा झूल रहा था और तरु-पत्रावृत उसमें बैठी वह विहंगिनी अपनी मधुर काकलीसे मधुमय स्वर छेड़ती रहती। केदार, मालकोश, पीलू आदि उसकी प्रिय रागिनी थीं परन्तु उसके षडज-ऋषभ स्वर जागतिक स्वरोंसे भिन्न थे। वह गाती रहती–यदा-कदा बाहरका कोई पक्षी उस स्वर-लहरीको सुनकर मुग्ध होता तो भी दाद नहीं दे पाता। अवश्य ही तुम मेरे मुरलीधर कभी-कभी अपनी मौजमें पिंजड़ेको हिल्लोलित कर देते, तब वह कभी तो डर जाती, कभी प्रसन्नतासे भर उठती। बस, इसी झूलेपर झूल रही थी वह बहिर्जगतमें, अवश्य ही अन्तर्जगत में घटित होनेवाली विभिन्न घटनाओंके साथ सम्यक् साहचर्य था उसका। सहभागी भी थी वह उनमें।

रस ढरकानेकी प्रियतमकी–तुम्हारी ही तो मानसीवृत्तिने पिंजड़ेको पूर्व दिशाकी

ओर सरका दिया। विहगी भी उसी ओरके सुखमय दृश्योंको देखने लगी। दृश्य परिवर्तित हो गया।

वैकुण्ठ नामकी नगरीमें एक परम ज्ञानी महापुरुष विराजित थे। विदेह जनककी भाँति वीतराग, आदर्श उदात्त चरित्रवाले मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराघवेन्द्र और जगज्जननी सीताके आराधक उन भक्तशिरोमणिको सीताराम, नारायण आदि मंगलमय नाम अत्यधिक प्रिय थे। वैश्यकुलोद्भव होनेके नाते वे अतिशय सरल तो थे ही, जागतिक प्रपंचके व्यवहारमें भी सुपटु थे। आकाशचारिणी उस विहगीने उन्हें नभमें उड़ते समय भी देखा था। वे अध्यात्म पुरुष थे। उनका प्रवचन भी उसने सुना था और उस श्रवणने उसके हृदयको प्रफुल्लित कर दिया था, परन्तु एक बड़ी विचित्र बात थी। वे वणिकपुत्र सदा इस पिंजड़ेपर अपना हाथ रखते थे। उधर तरुजालमें निलीन रहकर तुम भी अपना स्वत्व उसपर जमाये रखते। दोनों ज्ञान और राग अपनी-अपनी कथन मात्रकी अहंता के साथ वहाँ प्रतिष्ठित थे। वस्तुतः तो अहंताका उस देशमें प्रवेश नहीं-यह तो उस विहगीसे विनोद था, अथवा था अपने अधिकारके गौरवका प्रदर्शन। दोनों उन अधिकारियोंसे सुरसरिताके तटपर एवं रवितनया तपोवन पर जी-भरकर विहगीका वार्तालाप भी हुआ, पर वह किसे सुनाया जाय? कौन है श्रोता उसका? अतः यहीं विराम दे देना उचित है उसे। भावोंके प्रवाहकी दिशा बदल गई। विहगी स्वयंसे ही पिंजरेको सम्बोधित कर कहने लगी-

'केवल आठ गीतोंपर ही इसे आधारित कर चलनेका ही विचार था मेरा; परन्तु यहाँ तो लीलाका दृश्य भिन्न है, अतः कुछ दिन शांत, समाहित चित्तसे देखना ही ठीक है। मेरे आधान, मेरे प्राणपिंजर, तुम तो हँसते ही रहते हो, मैं भी हँसकर देखूँ? अभिनव नित्य-नवीन रंगस्थलकी संरचना हो जाय, मैं गानेवाली बन जाऊँ और तुम सब सुननेवाले, सुन लो। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि तुम भी ऐसा ही कुछ सोच रहे हो, तभी बार-बार मेरे कहनेपर रोक लगा देते हो। जो हो, तुम्हारे चरण-सरोरुहके रजकी छायाका भी तिरस्कार मेरे द्वारा कालके प्रवाहमें कभी भूलकर भी न हो जाय-यह मेरा

सत्य-सत्य मनोरथ है—अतः तुम यदि अभी इन आठ गीतोंको सुनना नहीं चाहते तो कोई बात नहीं। जिस महाभावमय संगीत-श्रवणकी तुम्हारी सुरुचि है उसी दिशामें पदविन्यास करती हूँ मैं। तुम तो ठहरे पारखी-जानकार, मैं धीरे-धीरे सुना रही हूँ तुम ध्यानसे सुनना।

देखो! जिसे तुम प्राणवल्लभे! मेरे असंख्य प्राणोंकी प्राण—कहते-कहते थकते नहीं हो, वह तुम्हारी जीवनमूरि निकुंजमें विश्राम कर रही थी और तुम उसके अलक्तक-रंजित सुकोमल चरण सरोरुहका अपनी कृष्ण-कुन्तल राशिसे मार्जन कर रहे थे...। सुललित श्रम-अपनोदनकी इस प्रक्रियासे रागरंजित हो उठा था तुम्हारा श्याम- सरसिज मुखमण्डल। तुम्हारे उस मन्द-स्मितमें व्यक्त थी सच्चिन्मय-माधुर्यकी पूर्ण गरिमा, और नयन-नलिन-युगलसे झरती मद-धारा और अधिक मदभीनी हो रही थी आज। वे तप्त-कनक-द्रव अंग-संस्थान श्लथ हो रहे थे—दोनों नील-पीत उत्पल कपोलोंपर मुक्ता-बिन्दु सदृश श्रम-सीकर चमक रहे थे; अवश्य ही हेमन्ती बयार स्वेद-समाहार हेतु कलधौत-मरकत श्रीअंगोंका स्पर्श कर धन्य हो रही थी। शुक्ल पक्षकी चतुर्दशी तिथि थी, शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन झकोरोंसे निकुंजके लता-वल्लरी-किसलय जाल स्पन्दित हो रहे थे, उस कारण सघन उन पत्रोंके मध्य छिद्रोंके निर्माण हो जाते, और उनसे कुंजमें प्रवेश करतीं हिमकरकी शीतल रश्मियाँ लज्जावनत हो कुंजकी अधिदेवीके चरणोंको पखारने लगतीं। सहसा, तुमने भी किसी विशिष्ट कारणवश अपने पद्म-पलाश लोचन उस अशेष-वैचित्र्यमय तप्त कांचन गौर श्रीमुखपर एक अभिनव जिज्ञासा लिए स्थित कर दिए। उस अनिन्द्य सौन्दर्यपूर्ण श्रीमुखपर व्यक्त भावोंको देखकर तुम क्षण-भरके लिए सशंकित-से हो उठे। भावीकी सूचना थी उस मुद्रामें, और वही थी तुम्हारे विस्मयका कारण; क्योंकि व्रजवनिता सिरमौर किशोरीकी भंगिमाके मधुर-मनोहर अर्थोंका पंडित, उनका ज्ञाता उस रस-रीतिका निर्वाहक—न तो तुम-सा कोई अन्य आजतक हुआ है, न है और न कभी कालके प्रवाहमें आगे होगा।

तुम्हारे हृत्तलमें विचारोंकी आँधी आ गई—तुम सोचने लगे, 'अरे, मुझे ऐसी प्रतीति

क्यों हो रही है कि मेरी प्राणप्रिया मुझसे मान कर बैठी है। ऐसा भ्रम तो मुझे कभी नहीं होता, मेरी प्राणवल्लभा तो सदैव मुझपर सदय रहती है। मुझ अरसिक लम्पटके अनन्त दोषोंकी ओर उन कृपामयीकी दृष्टि कभी जाती ही नहीं। आज यह परिवर्तन क्यों? किन्तु यह तो निश्चित सत्य है ही कि मुझसे कोई-न-कोई चूक हुई अवश्य है, मैं चाहे इसका कारण जान पाऊँ या न जान पाऊँ, इसे सिद्ध कर सकूँ अथवा न कर सकूँ, कहीं-न-कहीं कोई-न-कोई त्रुटि तो मुझसे हुई ही है।' अन्तर्वेदना और चिन्ताकी छाया उस नीलकांतमुखपर व्यक्त हो उठी और व्यथाकी गुरुताके कारण नवनलिन-दल ओष्ठद्वयसे सीत्कारकी ध्वनि निकल गई। 'सी-सी' के इस शब्दने कृष्णप्रियाके नेत्रोंको उन्मीलित कर दिया। अविलम्ब उठकर अपनी भुजवल्लरीकी माला प्रियके कण्ठदेशमें धारण करा दी, और इस प्रक्रियामें वे ढलक पड़ीं प्राणनाथके अंशपर। दोनोंके नेत्र मुद्रित हो गए नीरवताके उन क्षणोंमें, प्राण सम्मेलनके एकत्वकी गभीरतम रस-गुहामें दोनों विलीन हो गए। उस संविद् स्वरूप स्थितिमें, प्राण निर्बन्धनकी बेलामें कौन स्वीय गौर कांति और कहाँ श्यामलगुण दानात् कलेवर! कौन पहचाने?

एक बने दो, खेल रहे हम नित्य अनादि अनन्त अपार

* * *

नित्य एक ही, नित्य बने दो रसमय चिदानन्द सन्दोह

रसराजके स्थानपर महाभाव और महाभावमें पूर्ण प्रतिष्ठित रससागर; कैसे तथ्यको उद्घाटित करूँ? 'कुछ हुआ अवश्य है' कहकर ही अपनी वाणीको विराम देना उचित है; क्योंकि न कहनेवाली बची, न सुननेवाला। सब कुछ विसर्जित हो गया उस सर्वमंगला महामहीयसी रस-सरितामें। तुमने देखा ही होगा, अर्णवकी इठलाती तरंग-माला दो विपरीत दिशाओंसे आकर जब आपसमें टकराती हैं तब उनका प्रत्येक जल-कण एक-दूसरेको आत्मसात कर लेता है, अपने हृदयदेशमें स्थान प्रदान कर देता है; परन्तु कहीं-न-कहीं यह सत्य भी उसमें सन्नद्ध रहता ही है कि ये प्रवाह द्वय हैं। युग्म बिना रस कहाँ? लास्य कहाँ? अवगाहन कहाँ? विलास किससे? इस भावनाको प्रधानता दें

अथवा 'एक स्वरूप सदा द्वै नाम' के कथनकी पुष्टि करें-यह बूँदोंका उच्छलन-पतन मात्र होगा; इस मनसावांगअगोचर रहस्यका उद्घाटन नहीं।

वहाँ चिन्मय उस स्थलपर कथनमात्रके लिए शेष थी एक श्यामवर्णा अतिशय रूपवती रमणी। उसके अंग संस्थान अवश्य ही नीलकांतमणि निर्मित पुत्तलिकाकी भाँति प्रतीत हो रहे थे; परन्तु उसका उरस्थल आलिप्त था अभिनव पिंगलतासे। नवजलधरमें नित्य स्थित सौदामिनीकी भाँति नित्य अवस्थिति थी उस पीत वर्णकी उसके हृदयदेशमें। सजल नयना वह मुक्तकेशी अर्ध विक्षिप्त-सी अपना इतिवृत्त सुनाती हुई इधर-उधर घूम रही थी। उसकी उस व्यथा-कथाको सुननेके लिए वहाँ कोई उपस्थित न था, स्वगत ही कहती जा रही थी वह। प्रिय-अदर्शनकी वेदना-ज्वालासे उसके प्राण दग्ध हो रहे थे और अस्फुट स्वरमें बोलती जा रही थी वह-'देखो सही, कोई भी शेष-शेषी नहीं है, जिसके नेत्रोंसे नेत्र मिलाकर, जिसकी काली पुतलियोंमें झाँककर मैं देख सकूँ अपना प्रतिबिम्ब भी। कोई दर्पण होता तो उसमें ही देख लेती; परन्तु उसे भी तो मैंने ही फोड़ दिया। जानते हो क्यों? मैं जब उसमें अपना प्रतिबिम्ब देखती, तब वह हँसने लगता था, और उसकी यह हँसी मुझे रुचिकर प्रतीत नहीं होती। परन्तु हायरे, आज तो मेरे समीप कोई नहीं है। वह नीली कल्लोलिनी भी सूख गई। उसमें प्रवेशकर मैं अपने विरह-तप्त तनको तनिक शीतलता प्रदान करना चाहती थी; परन्तु अरे यह क्या? मेरे शरीरकी ज्वालाको वह सरिता-वह सागर भी सहन न कर सके, वाष्प बनकर उड़ गए, लुप्त हो गए। अंशुमाली क्षितिजकी ओटमें समा गए-किरणराशि-सृजन की सत्ता ही उनकी समाप्त हो गई। मैं भाग्यहीना तो स्वयं ही दयाका एक कण माँगने यहाँ आकर खड़ी हुई थी। कदाचित उस छायासे मैं अपना तन भी आवृत कर सकूँ यही आशा लेकर आई थी। परन्तु हायरे, मेरे उत्तप्त प्राणोंकी ऊष्माने तो उन्हें भी भस्म कर दिया। इतना ही नहीं दिनकरकी किरणोंसे ही तो उद्भासित होते हैं हिमकर, जब तरंगमाली ही नहीं रहे तब चन्द्रोदयका प्रश्न कहाँ? और जानते हो! उनके साथ ही सदा-सर्वदाके लिए समाप्त हो गया अस्तित्व दिवा-रात्रिका। अंशुमाली बिना दिन कहाँ? शशिधर बिना निशा कैसी?

घटाटोप अन्धकार आवृत कर चुका है सर्वत्र सब दिशाओंको। तुम पूछोगे–'जब कुछ भी शेष नहीं, आलोककी एक रश्मि भी नहीं, तब इस तिमिर में जीवित रहनेका लाभ क्या?' पर मेरी नित्य अनुभूति आज भी ज्यों-की-त्यों अक्षुण्ण है। यह कालापन, यह कृष्णता मेरे त्रिभंगसुन्दर श्याम, मेरे जीवनधन, मनमोहन प्राणरमणके ही कृष्ण वर्णकी छाया ही तो है। मेरे नीलमणिके अवयव-विन्यासकी ही तो आभा है, अतः उससे दूर भागना तो मेरे लिये सम्भव ही नहीं। इतना ही नहीं, मेरे कर्ण-रंध्रों में तो वही उन्मद वेणुनाद अब भी पूरित है। मैं भ्रममें पड़ी हुई हूँ, निर्णय नहीं कर पा रही हूँ। यह सत्य ही मेरे प्राणवल्लभकी भुवनमोहिनी वंशीका स्वर है–उसी निनादकी झंकृति है, जो आज भी मेरे कानोंमें प्रवेश कर रही है। धरा समन्वित सम्पूर्ण आकाशको रस प्लावित करनेवाली यह ध्वनि नभ के कर्ण-छिद्रोंमें भी तो प्रवेश पा रही होगी। मैंने बारंबार उससे अपने भ्रमका निवारण करनेके लिए प्रश्न किए; परन्तु वह निरुत्तर ही रहा। सम्भवतः उसके पास भी इस सत्यके आकलनकी स्फूर्ति नहीं थी। खैर, जो हो मुझे तो केवल इतना ही अभिप्रेत है कि कदाचित यह भ्रम हो तो मेरा यह भ्रम कभी टूटे नहीं, और यदि सत्य-सत्य मेरे नीलचन्द्रदेव वंशीमें तान भर रहे हैं और मुझ अभागिनके दृष्टिपथमें नहीं आ रहे तो धिक्कार है मेरे जीवनको। अहा-हा, उन मृणाल-नाल भुजाओंपर प्रस्फुटित जलज-से कर-युगलमें संस्थापित वह मुरलिका बन्धूक-कुसुम-द्युति अधरोंपर विराजित हो रही थी। निश्चित ही उस गरीयसी प्रीतिके चिन्ह त्वगेन्द्रियपर व्यक्त भी हो रहें हैं। पर हे पवन देव, तुम्हारी गति तो सर्वत्र निर्बाध है तुम इसके साक्षी रहे भी होओगे, पर इस रहस्यको गोपन ही रहने देना। मेरे शत बार आग्रह करनेपर भी तुम मुखर मत होना अन्यथा इस सत्यको उद्घाटित कर देनेपर तुम्हें अबला-वधके पातकका भागी होना पड़ेगा।

भस्मीभूत चन्द्र-सूर्यसे भी मैं विनय करती हूँ–कालके प्रवाहमें अपने ही किसी पूर्व सुकृतके फलस्वरूप यदि आप पुनर्जीवन प्राप्त कर लें तो वह रूप, जो दृगोंमें प्रतिभासित हो रहा था वह सत्य था अथवा मात्र चिन्तन–इसकी आख्या-व्याख्या कदापि मत करें–इतनी दयाका दान तो आप मुझे अवश्य प्रदान करेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

वह अप्रतिम रसमत्तता माया थी अथवा सत्य, अब इसे जाननेकी आवश्यकता क्या? और जानकर लाभ भी क्या होगा? यह तो स्पष्ट है ही कि वह रस पान कराने वाला आज इस पीनेवालीके समीप नहीं है। हाय रे नियति...!

यह सम्पूर्ण शश्यश्यामला धरित्री शुष्क मरुस्थलमें परिणत हो गई है-सुमनोंके सौरभका लेश भी अब यहाँ नहीं रह गया है। मैं तो उन्मादिनी हो चुकी हूँ, मुझे तो उन नील श्रीअंगोंका सौरभ प्राप्त था। उस दिव्य अंग-गंधके समक्ष आजतक प्राप्त सम्पूर्ण सुगन्ध हेय है, नगण्य है।

वस्तुतः मुझे तो सुवासका परिचय सत्य-सत्य हो ही नहीं सका, जानते हो ऐसा क्यों हुआ? उस काले कृष्णसे संस्पर्शित होकर मेरा मन भी पूर्णतया काला हो गया है। अब उस मनसे जिस किसी वस्तुका स्पर्श होता है, जो भी उसके निकट आती है, अथवा मेरे मनमें जो भी विचार उत्थित होते हैं वे सब काले होकर ही आते हैं।

मैं उसी कृष्णतामें रँग चुकी हूँ और मेरे पास आनेवाला भी उसी रंगमें रँग जाता है।

काजलकी कोठरीमें केतो हू सयानो जाय।
एक लीक लागि है, तो लागि है, पै लागि है।।

यह तो होगा ही, यह कृष्ण वर्णकी अपनी महत्ता है। यह काला रंग एक बार चढ़ जाय तब छूटता नहीं, घन-घनतर होता चला जाता है। अब तो मुझे इस कृष्ण वर्णके नित्य सान्निध्यमें ही अनन्तकाल तक जीवित रहना है। मैं भी रो-रोकर अब पूरी तरह कालेमें ही परिवर्तित हो गई हूँ। मेरे चतुर्दिक भी यह दिव्य कालिमा ही व्याप्त हो रही है। देखो, यह पल्लव-किसलय, तना-स्कन्ध सब काले हो गए हैं। निकुंजको आच्छादित करनेवाली यह तरु-श्रेणी, द्रुमावली सब कृष्ण हो चुके हैं। इतना ही नहीं, अब तो कुंजका कण-कण ही मानो कृष्ण-कृष्णका स्वर सुना रहा है। सर्वत्र कृष्णता, सर्वप्रियता, सर्वग्राह्य, सर्व-सुखकर असीम सुखप्रदायिनी अप्रतिम कालिमा, अद्वितीय कलुष वर्ण, सम्पूर्ण आलोककी अधिष्ठात्री उज्ज्वलताकी जन्मदात्री श्यामल-द्युति, वह

बंकिम चितवन, त्रिभंग ललित अंग-संस्थानोंकी मुद्रा, वह मनहर कटिकी भंगिमा-इन सबका अन्तिम बार दर्शन मैंने जहाँ किया था, जिस तरुका आश्रय लिए खड़े थे वे मेरे प्राणसार वह पादप भी अपनी हरीतिमा-अपना रस खो चुका है-काला, रसहीन होकर खड़ा है। यद्यपि आगेके सघन पादप-जालको मैं देख नहीं पा रही हूँ, परन्तु मेरा निश्चित विश्वास है वे सब भी उस अदर्शन-दावासे दग्ध हो चुके होंगे।

अरे, गिरिराज परिसरकी वह वनस्थली जहाँ खड़े होकर वे अपने पीत दुकूलको लहरा-लहराकर गो-गोवत्सोंको एकत्र कर रहे थे। विविध मनोहारी रंगोंके सुमनोंसे तुंग-शैल आच्छादित था और उनकी मधुर सुवाससे वातायान सुवासित हो रहा था। उस रत्नगिरिकी चमक अब कालेमें बदल चुकी है। अब रत्नोंके जाज्वल्यमान प्रकाशसे नेत्रोंमें चकाचौंध नहीं होती। निविड़ नीरव कालेपनसे आच्छादित हो गया है सब कुछ। मेरी नेत्र ज्योति भी उस वर्णमें ही समाहित हो गई है। अब कैसे निर्णय करूँ दिशाका? प्राची-प्रतीचीका भेद कहाँ आ सकता है मेरे दृष्टिपथमें? अखिलभुवनसमर्थ, सर्वनियन्ता! तुमसे ही यह याचना करती हूँ... दृष्टिहीन हो जानेपर भी मुझे तुम्हारी कृपाके कारण दिग्भ्रम न हो, मैं उसी दिशामें पद-विन्यास करूँ जिस ओर करना चाहती हूँ, जो दिशा मेरे प्राणवल्लभकी ओर ले जानेका संकेत-दान करती है।

मैं जानती हूँ, मेरे प्राणाधिक जिस प्रदेशमें हैं वह मुझसे दूर-अत्यन्त दूर है, मैं क्या करूँ? मेरी साँसोंका तापमान बढ़ता ही जा रहा है तो क्या मैं उस देशकी विपरीत दिशामें भाग चलूँ, जिससे उत्तप्त प्राणोंकी इस ऊष्मासे मेरे इन्द्र-नील-द्युति साँवरको मेरे अंगोंकी इस उष्णतासे कष्ट न हो। एक दिन वह था जब मधुमद-मुखर मधुकर-समूह मेरा अनुगमन करते मेरे पीछे-पीछे चलते। जानते हो क्यों? मेरे प्राणधनके श्री अंगोंकी गंध उन्हें मत्त किए रहती और वे गुन-गुन करते उसी दिशा की ओर उड़ते रहते; परन्तु आज, आज तो मुझ विखण्डित मानसाके पास इस जर्जर देहके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। यह भी क्रमशः विनाशकी ओर ही अग्रसर हो रही है। अतएव यह प्रदेश गन्धवाहसे भी दुर्गन्धयुक्त हो उठेगा। मुझे निश्चय ही इस स्थलीसे दूर-दूर--अत्यन्त दूर चले जाना

चाहिए, जिससे यह असहनीय दुर्गन्ध मेरे प्राणप्रियके नासा छिद्रोंमें प्रवेश न पा सके।

यह तो परम सुनिश्चित सत्य है कि मैं पंचतत्त्व को प्राप्त नहीं करूँगी! मरूँगी नहीं मैं! और जीवन रहनेपर यह तन तो विरह ज्वालामें जलता ही रहेगा, उन काली-काली लपटोंसे जो धूँआ उठेगा वह गगनको आच्छादित कर लेगा। जानते हो यह धूम क्यों उठता है? मेरे इस शरीरपर नीलसुन्दर देवकी दृष्टि पड़ी है। रसराजकी उस दृष्टि-सुधासे इसमें रस संचरित हो चुका है। आज जब ज्वाला उसे जलानेका प्रयत्न करती है तब वह रस उसका शमन कर देता है, और उस अग्नि-शमनके कारण उद्भव होता है धूमका। यह धुँआ कहीं मेरे प्राणवल्लभके सिताम्भोज दृग सरोजोंको पंकिल न बना दे, इस भयसे भीत हो रही हूँ मैं।

अच्छा, वे इस समय क्या कर रहे होंगे? शांत स्थिर बैठना तो उनके स्वभावमें ही नहीं है। चंचलता उनका साथ छोड़ दे यह सम्भव नहीं। सम्भवतः पुष्प चयन करके वे किसीकी ग्रीवामें धारण करानेके लिए हार गुम्फित कर रहे हों, अपनी भुजाओंका हार ही किसीके कण्ठ देशमें पहनाकर उसके सहारे तनिक दोलित-से हो रहे हों; अथवा यह भी तो हो सकता है नवीन कोमल किसलयोंको ले शय्या निर्माण कर वे उत्कण्ठा लिए गिरिवरके उस पार मेरी ही प्रतीक्षा करते हों। हायरे, यह पिशाचिनी आशा मेरा साथ नहीं छोड़ती। यह मायाविनी ठगिनी मुझे यह सुख स्वप्न क्यों दिखाती है? अरे, यदि इस सर्वथा कुरूपा गुणहीना दासीका सामीप्य ही उन्हें सुख प्रदान करता, तो वें इसे छोड़कर जाते ही क्यों?

परन्तु मैं क्या करूँ ? मैं चाहकर भी उस प्रस्वेद भरे नील-मुख-सरोरुहको भुला नहीं पाती और जब मेरा चित्त उनका चिन्तन करेगा तो उसकी प्रतिच्छाया तो उनपर पड़ेगी ही। यह तो अवश्यम्भावी सत्य है कि मेरी मानसिक वृत्तिका प्रतिबिम्ब उनपर होकर रहेगा, और यदि ऐसा हुआ तो यह धू-धू करके जलानेवाली ज्वालाको देखकर उनका हृदय आहसे भर उठेगा, यह आह—यह वेदना उनका कष्ट द्विगुणित कर देगी। कदाचित मेरे मनकी किसी भाव किरणसे उनका तनिक सा स्पर्श हो गया तो इस वृन्दा

काननके उस पार जाकर सुखी होनेकी उनकी सारी अभिसंधि धरी-की-धरी रह जायगी। सारा रस–कुरस, बेरस हो जायगा। वानीर कुंजकी बातोंकी स्मृति आते ही, उनकी सुख प्राप्तिकी आशा-कलिका खिलनेके पूर्व ही कुम्हला जायगी–सारे सुख स्वप्न समाप्त हो जाएँगे।

कदाचित मेरे प्राणरमणके ही पूर्व सुकृतसे, किसी प्रबल पुण्य प्रारब्धके बलसे मैं उनको सर्वथा-सर्वांशमें सत्य-सत्य विस्मृत कर जाऊँ; मेरा यह मन–इसकी चेष्टाएँ उनके मानस पर प्रतिबिम्बित न हों, अन्य चाहे जो भी कुछ मुझे इसके लिए करना पड़े मुझे स्वीकार है। बस मेरे मन का उनके मन से पार्थक्य हो जाय–केवल यही वांछित है मुझे इस क्षण। पर मैं भलीभाँति परिचित हूँ अपनी मानसी वृत्तिसे। यह कथमपि सम्भव नहीं–हो सकता ही नहीं। कैसी अधमा, प्रिय-सुख विघातिनी मैं हूँ। शत-सहस्र बार धिक्कारके ही योग्य हूँ मैं तो और यह धिक्-धिक्की झंकृति अनन्तकाल तकके लिए मुझे प्राप्त हो, मुझ निजसुखवासना-विमोहिता कामिनीके लिए यही उचित है।

कितना सुखद वह प्रसंग होता यदि मेरी स्मृति मेरे नीलमयंकको पीड़ा न प्रदान करती! कभी भूलसे भी वे पुनः उस प्रीति-संदोहिनीके तटपर न आते और मेरा क्रन्दन उनको कष्ट न पहुँचा पाता। उस क्षण मेरी यह व्यथा भी मुझे वरेण्य प्रतीत होती, सुखदायिनी होती मेरे लिए, क्योंकि मेरे प्रियके मुखपर खिन्नता नहीं होती। अब मैं क्या उपाय करूँ, कैसे प्राणप्रियको सुखी करूँ? अच्छा, एक उपाय आया है मेरे मनमें।

इतनी ही तो धूमिल-सी छाया है मेरे नेत्रोंमें कि मेरे वे प्राणरमण मेघश्यामसे मनोहर अंग द्युतिवाले हैं, तो क्यों न मैं एक मानसी बालिकाकी मूर्तिका गढ़न करूँ जो वैसे ही श्यामल मुख-कर-चरणोंवाली हो। उसके श्रीअंगोंसे भी वही नीलाभा विकीर्ण होती हो। उसके वस्त्र-परिधान भी सब उनके पीत दुकूलकी भाँति पीतवर्ण हों, वह उनकी ही अनुकृति बन जाय। उसके अंग-सौष्ठवको वस्त्रालंकारोंसे, उसे मैं प्रतिदिन वनमालासे सज्जित कर दूँगी और उसके प्राणोंको अपने प्राणोंके कृष्ण-चैतन्यसे परिपूरित कर दूँगी। मेरे प्राणोंसे ही स्पन्दित होगी वह। उसकी स्वतन्त्र-चेतनाकी कल्पना होगी



मैं गढ़ूँ एक प्रतिमा सुन्दर मानसी बालिका की प्रियतम

ही नहीं। वह होगी मेरी अनुजा–वह मेरी दृगपूतरी भगिनी, मेरे प्राणोंकी आसक्तिसे संलालित मेरी बहिन। उसके स्वभावमें मैं अपने प्रियतम का अप्रतिम शील भर दूँगी। भरना क्या, मेरे प्राणनाथके अप्रतिम शीलसे ही निर्माण होगा उसके स्वभावका और वह छायाकी भाँति अहर्निश मेरा अनुगमन करेगी। उसका मेरा प्राण-एकत्व प्रकृतिसे परेकी वस्तु होगा। मेरी निमीलित आँखें उसे देख पायें या नहीं, वह अविराम मुझे ही निहारती रहेगी। इस दर्शन की जीवनी शक्ति पर ही अवलम्बित रहेंगे उसके प्राण। बस, मैं ही उसके श्वास का आरोहण-अवरोहण बन उसके हृत्तल में निवास करूँगी।

फिर मैं उसे अपने वंशीविभूषित वनमाली की भाँति वंशिका अधरों पर संस्थापित कर उसमें स्वर भरना सिखाऊँगी। वेणु के उस नाद का भली भाँति अर्थ बताऊँगी, और उसके भुवनमोहन प्रभावसे उसे परिचित कराऊँगी। निश्चय ही मैं प्रियतमकी भाँति उसे सभी राग-रागिनियोंकी पहचान तो नहीं करा सकूँगी, उसे संगीत-विशारद अथवा वंशी वादनमें निपुणा भी नहीं बना पाऊँगी। परन्तु कल्याण आदि संध्याके राग वह अवश्य सीख लेगी, और मेरा जो नाम उन्हें अत्यन्त प्रिय था, जिसे वे वंशीमें अविरत गाते रहते हैं उसे अवश्य गाने लगेगी। फिर मैं उसके उस रूपसाम्य, गुणसाम्यमें अपने चित्तको लगानेका प्रयत्न करूँगी, उसीमें तल्लीन रहनेका प्रयास करूँगी। कदाचित इस प्रक्रियामें मेरा मन अध्यस्त हो जाय उस नीली पुत्तलिकामें, और मैं प्राणरमणके अमिलनकी दुःसह वेदनासे त्राण पा सकूँ? मेरी यह आन्तरिक प्रसन्नता ज्यों-की-त्यों उनमें अपनी छाया मूर्त कर दे, और वे भी यह जानकर प्रफुल्लित हो उठें कि अब मेरी प्राण सहचरी किंकरी भावसे भावित हो गई है। अब वह दुःखिनी नहीं है। उसके दिवसका अवसान शांतिकी छाया तले होता है, निशाकी अमाके अवगुण्ठनमें वह निःशंक निद्रित होती है; और जब उसकी दिनचर्या शांति संचालित है, उसकी प्रवृत्तिपरक वेदनाकी निवृत्ति हो चुकी है, तब मेरे प्रत्यावर्तनका प्रश्न क्या? यह संकल्प उनके मनमें कदापि उत्थित न हो, अपितु सदा-सर्वदाके लिए यह प्रश्न समाप्त हो जाय। मेरा विस्मरण उन्हें सुखी बना दे। कालके अनन्त प्रवाहमें वे सदा-सर्वदाके लिए भूल जाएँ मुझको। जगन्नियन्ता मेरी यह साध पूरी

कर दें। मेरे प्राणधनको सुखी कर दें।

पर मेरा मन तो आशंकित हुए बिना मानता ही नहीं, इसका क्या उपाय करूँ मैं? यदि ऐसा हो भी जाय, वे मुझे सर्वथा विस्मृतिके गर्भमें छोड़कर सुखी हो भी जाएँ– तो भी एक नवीन दुश्चिन्ताने आकर घेर लिया है मुझे। कहीं स्वसुखाभिलाषिणी रति-क्रीड़ा-संकुला किसी मधुपुरीकी रमणीने समागम रससे उल्लसित होकर–परिरम्भणमें आबद्ध करनेकी व्यग्रतामें, उस नील अरविन्द अंग-संस्थानपर अपने कंकणका चिन्ह अंकित कर दिया–तब कैसी व्यथा होगी उन मृदु-मधुर श्री अंगोंमें। वह पुर-वनिता तो उस क्षण राग-स्फुरणके बिन्दुपर विवेकाविवेकका ज्ञान खो बैठेगी, और वे परहित-सुख-सम्पादन निरत मेरे गुणशाली प्रियतम इस कष्टसे सम्भवतः अनभिज्ञ भी रहें ही, परन्तु वह कंकण-चिन्ह और उस चिन्हको अंकित करनेवाली दोनों ही मेरे हृदय-फलकपर तो निश्चित मूर्त होंगे ही। मैं यह भी जानती हूँ–उन सच्चिन्मय, निर्हेतुक, परम-उदार रसदानीको कैसी भी, कुछ भी अवांछित स्थितिका सामना करना पड़े, वे अपने रसदानके स्वभावका परित्याग नहीं करते। कोई क्षत उन अक्षतके स्वरूपगत भावपटको विदीर्ण कर दे, न तो आजतक हुआ है और न ही आगे कभी होगा। रसिकशेखरकी ओर उन्मुखता हो जाय फिर कोई भी हो, कैसी भी हो उसे रससिन्धुमें डुबाकर, निमग्न करके उसे रससिद्ध बना देना व्रत है उनका। उस सुधा-सरोवरकी एक बिन्दु अगणित रतिनायकोंकी जन्मस्थली है–अतीत-अनागत सम्पूर्ण सौंदर्य माधुर्य रस-रतिका उद्गम है। उस क्षण मेरे प्राणोंमें कैसा करुण आर्तनाद उठेगा? मेरे साँवरकी उचित सँभाल अब कैसे हो, कौन करे? इस दुश्चिन्तासे मेरा हृत्तल फटने लगेगा। उस स्वसुखवांछा-विकलाका वह भुजपाशमें आबद्ध होनेका सुख तत्क्षण नष्ट हो जाय, जल जाय। जिस केलि-शयन-अनुगामिनी उत्कंठाने उसमें इतना अधैर्य विस्तारित कर दिया कि नव-नलिनदल सदृश नील-तन कहीं मर्दित न हो जाय, कोई क्षत-व्रण न हो जाय उस नील-जलजपर, इस ओर भी सजग न रह सकी वह। ऐसी माया-विलसित-मति मधुपुर-रामा मेरे प्राण-सर्वस्वको क्या सुख प्रदान करेगी? हायरे, कैसे उनकी सार-सँभाल करेगी? सौभाग्यश्रीके नेत्रोंमें आँजा

गया सिद्धांजन-सा सुचिक्कण, वह नीलोत्पल, वह महा-मरकतमणि आभा तो सीपकी भाँति नेत्रोंमें समाकर रखने-योग्य है। हृदयमें संगोपित करनेकी वस्तु है। यदि कोई आदर्श ललना ऐसा कर सके, इस भाँति उन्हें समादृत कर रख सके, तब तो मैं प्रफुल्लताका अनुभव कर सकती हूँ, अन्यथा मैं स्वयं तो रोऊँगी ही उनको भी निरवधि पीड़ा दान ही करूँगी।

मुझ हतभागिनीका अस्तित्व ही इसीलिए है—कितना अशेष मंगलमय विधान यह होता कि मेरे इस जघन्य जीवनका आविर्भाव ही न होता। वे मेरे प्राणरमण एकाकी ही रह जाते...। पर मैं ठहरी गँवार, गाँवकी ग्वालिन। मैं क्या समझूँ कौनसी परिस्थिति वस्तुतः वरेण्य होती? कौनसा क्षण सुखका क्षण होता? रुदन अथवा हास्य कौनसी स्थिति अधिक सुखप्रद होती? ऐसा सुना है मैंने—कभी-कभी औदास्य भी सुखका सर्जक होता है। पर मैं कहाँ जाऊँ? किससे पूछूँ? क्या करूँ? मुझ अनाथाकी कौन सुने... अरे, जब वे मेरे प्राणधन ही मुझपर सदय नहीं रहे, मेरा परित्याग करके चले गए तब दूसरा ऐसा कौन है, जो मुझपर दया कर देगा? मेरे असंख्य प्राणोंके प्राण मेरे नीलचन्द्रने ही जब मुझे निराश्रिता बना दिया, मेरा परित्याग कर अन्यत्र चले गए, तब अब शेष रहा ही क्या है? पर यह कैसा महान आश्चर्य है! मैं कुछ समझ नहीं पाती वे चले गए, मेरा तो सब कुछ स्वाहा हो गया—शेष रह गई ज्वाला—घनीभूत अन्धकार। मुझे तो अब यावज्जीवन रोना है, रोना था—जलना ही था मेरे प्राणोंको तो, उस दग्ध होनेकी पीड़ाको सहन करना ही था! परन्तु यह क्या? मेरे प्राणसर्वस्व भी सुखी नहीं हो सके, उनकी सांघातिक पीड़ाको सहन करना मेरे लिए असम्भव है। हाय-हाय! देखो, वे तो वहाँ उस सुदूर प्रदेशमें रहकर भी रो रहे हैं।

अहा हा! मेरे नीलमयंकके द्रवीभूत नीलकांतमणि-से अमल कपोलोंपर अश्रुधार बह चली है, सिक्त हो उठे हैं कपोल-द्वय। मत रोओ मेरे प्राणनाथ! मैं अविलम्ब आ रही हूँ मेरे नाथ! मैं तो यहीं हूँ तुम्हारे निकट ही। जीवनेश्वर! मेरा जीवन अन्यत्र रह कैसे सकता है? मैं गई कहाँ थी? मैं अपने हाथोंसे तुम्हारा अश्रु-मार्जन करूँगी। प्रियतम!

तुम क्या बावरे हो गए हो? देखो, मैं तो यहीं तुम्हारे समीप ही हूँ, मैं तुमसे मानिनी हो सकूँ यह कैसी अनहोनी बात तुम सोच रहे हो! मैं तो यों ही तुमसे विनोद कर रही थी और तुम इसे सत्य मान बैठे!

मेरे अर्बुद! मैं अपने शतलक्ष प्राणोंको तुमपर निछावर करती हूँ। मेरे इस खेलने तुम्हें इतना व्यथित कर दिया? यदि इसका तनिक भी आभास मुझे होता तो मैं इस ओर कभी नहीं आती। मेरी गतिकी दिशा ही प्रत्यावर्तित हो जाती। अच्छा सुनो! अब मैं तुम्हें सत्य-सत्य बतला देती हूँ कि मैंने यह अभिनय क्यों किया? गिरि-उपत्यकाओंसे आवृत प्रस्तर-खण्डों एवं कँटीली झाड़ियोंसे घिरा हुआ वह वन था, कहीं कोई पथ-पगडंडीका भी चिन्ह नहीं था। सर्वत्र काँटे और पत्थर बिखरे पड़े थे। घटाटोप अन्धकार परिव्याप्त था, साथ ही था सूनेपनका साम्राज्य, जिसमें गड़-गड़का कर्णभेदी रव और अधिक भयकी सृष्टि कर रहा था। मैं तो उस परिवेश को देखकर ही भयभीत हो रही थी, परन्तु तुम्हारी कौतुक प्रियताको क्या कहूँ? तुम जाकर उस घोर वनमें छुपकर बैठ गए। तुम्हीं विचार करो, मेरे प्राणोंके अधिदेवता! उस क्षण मेरी क्या दशा हुई होगी?

अरविन्द-कोश-रज निर्मित शय्या हो, अथवा शत-शत नलिन-दलसे निर्माण किया गया आस्तरण हो—मुझे यह भय बना रहता है कि नवनीत स्निग्ध तुम्हारे सुकुमार श्रीअंगोंमें कहीं कोई कठोरताका, खुरदरेपनका स्पर्श न हो जाय। उस काठिन्यकी छाप तुम्हारे मूर्तिमन्त म्रदिमासे मृदुल अवयवोंपर अंकित न हो जाएँ इस आशंकासे आशंकित हो अपनी नयन पुतरियोंकी सेजपर ही तुम्हें पौढ़ाना चाहती हूँ। उस क्षण भी एक संकोच बना ही रहता है—मेरे नेत्रोंके कटाक्षकी तीखी धार कहीं कोई अघटन न घटा दे...। कहीं अपनी तिरछी चालसे सहजताकी गतिमें कोई अवरोध न उत्पन्न कर दे। एक ओर भीतिकी यह पराकाष्ठा—और दूसरी ओर तुम्हारा दुर्दमनीय साहस...। उस कंटकाकीर्ण शैल-शृंगपर जा चढ़े तुम और स्वयंको आवृत कर लिया उन शूलोंसे।

तुम्हीं बताओ, ऐसी स्थितिमें तुमपर शासन करनेके अतिरिक्त मेरे पास क्या उपाय था? यह वृत्ति जगनेके कारण ही मैंने तुमपर नियंत्रण करना चाहा, शासन करके

तुम्हें भय दिखाना चाहा। मुझे ठीक-ठीक ज्ञान था कि इस आचरणसे रसका प्रवाह एक बार थम अवश्य जाएगा, परन्तु यदि तुम सचमुच डर गए तो भविष्यमें इस भाँति भागकर किसी गिरि-कन्दरामें छिपनेकी निर्भयता तुममें कभी उदय नहीं होगी—ऐसा चापल्य तुम पुनः नहीं करोगे—बस इसी धारामें बहते हुए मैंने यह निर्णय ले लिया।

मुझे इसका तनिक भी भान नहीं था कि मेरा यह कर्म तुम्हें इतनी पीड़ा पहुँचा देगा। तुम्हारे बंधूक-कुसुम-द्युति अधर कम्पित हो उठेंगे, और पद्मपलाश लोचनोंसे जलकी बूँदें बरसने लगेंगी। प्रियतम! सत्य मानो यदि क्षणार्धके लिए भी मुझे यह अनुभूति होती, इसकी कल्पना भी मैं कर पाती तो कदापि तुम्हें समझानेका यह प्रयास नहीं करती। कोई और सुन्दर-सरस, तुम्हें रुचिकर प्रतीत होनेवाले मार्गका चयन करती। हाय रे! मुझसे यह भूल कैसे हो गई—मैं अपने प्राणवल्लभकी गरीयसी प्रीतिके आकलनमें त्रुटि कैसे कर बैठी...? उनकी अपने प्रति आत्यन्तिक आसक्तिका अनुमान क्यों न कर सकी? मेरे असंख्य प्राण इस ममता पर बलिहारी हैं...!

क्रन्दनको हास्यकी भूमिका प्रदान करनेके प्रयासमें निःसृत अट्टहासकी उस ध्वनिमें, उस घनीभूत पीड़ाके स्वरमें आकाश फट गया, उस नभस्वानकी सत्ता ही समाप्त हो गई...। उस नभका अन्तर विदीर्ण होनेके भीषण रवमें सब कुछ समा गया.. कहीं कोई अवस्थिति रही ही नहीं। प्रकृति विक्षुब्ध हो उठी, मेरा निजस्व-अस्तित्व अन्तर्हित हो गया उस घनघोर रवमें। वातायन स्तब्ध हो उठा, कहीं कोई स्पन्दन नहीं रहा, कल्पना नहीं रही—यह निर्णय होना ही कठिन हो गया है कि अब यहाँ प्रकृतिकी उपस्थिति है, अथवा चितिका साम्राज्य...। इस महाप्रलयके उपरान्त जो कुछ भी परिलक्षित है वह हास्यकी मुक्ता वृष्टि है, अथवा अश्रुजल निर्मित वह कर्दम.. जिसपर स्थिर चित्त रहकर संचरित कोई हो सके यह संभावना ही अकल्पनीय है।

महाप्रलयकी उस झंझाके थपेड़ेमें विनाशकी वह लीला प्रारम्भ हो गई। शब्दोंमें बाँधी जा सके ऐसी व्यथा-कथा वह रही ही नहीं...। हाहाकारके अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रहा...। उस अभिनव यौवना तरुणीका कण-कण बिखर गया—ऐसा दृश्य उपस्थित

हो गया मानो वह कोई बालुका-कण-निर्मित पुत्तलिका थी। और झंझाके प्रबल झकोरेंने उसका कण-कण चतुर्दिक विकीर्ण कर दिया। पीतोत्पल उसका उरस्थल और मरकत-सोपान-माला उसकी देहयष्टि सब मानो परिवर्तित हो गए रजकणमें.. बालुकाका स्तूप बनी वह इन्दुकला-कलिका अवस्थित थी धरित्रीपर और चन्दन-मृगमद-वाहिनी वायु उड़ा ले चली उन पिंगल बालुका-कणोंको। गगनव्यापी प्रत्येक उस अणुमें, प्रति परमाणुमें नील-पिंगल वह अतुल आभा प्रत्यक्ष थी..। 'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते' के सत्यको स्थापित करता वह प्रत्येक लघुतम रजकण स्वयंमें पूर्णत्वको प्राप्त था। पीताभाका प्रवेश हो रहा था तप्तकांचन गौरांगीकी वर्णाभामें और नीलिमा संगमित हो रही थी नव-जलधर-द्युतिमें...।

चिन्मयताका वह अचैतन्य ही तो था उस रेणुकाका वास्तविक स्वरूप.। और उस कण-कण का तो सहज आत्म-निवेदन था नील-गौरके प्रति...। कथनमात्रके लिए भी कोई कण अवशिष्ट न रहा वहाँ, सबने स्थान ग्रहण कर लिया अपनी नित्य निवास-स्थलीमें... नील दम्पतिकी अंग-द्युतिमें।

इस भाँति उस कूल-विहीन रससिन्धुके इस निरुपम उद्वेलनमें तुम्हारा स्वरूप विलास अविरत चलता ही रहता है। कालकी वहाँ सत्ता नहीं—सब कुछ प्रतिष्ठित है स्वरुचिमें—आत्म महिमामें। कालमानकी गतिमें आबद्ध यह हो सकता नहीं, हुआ नहीं, अनादि प्रवाह में कभी होगा नहीं। यथारुचि उसमें मज्जन, अवगाहन करनेकी तुम्हारी योजना तदनुरूप ही परिस्थितियोंका निर्माण कर देती और तुम उसके साथ अपनी लीलाशक्तिका संयोजन कर सुखदान ग्रहणकी क्रीड़ामें संलग्न रहते।

जो हो, इस उत्ताल तरंगने तटका स्पर्श किया और तुम जग पड़े। उस लास्यकी रसमयी लीलासे बाहर आ गए नवीन अभिसन्धि लेकर, और तुम्हारे साथ ही जग उठी तुम्हारे प्राणोंकी अधिदेवी भी। दोनोंकी परस्पर अनुभूति अथसे इति तक सर्वथा एक थी—सम्पूर्ण लीलाक्रमकी अनुभूति दोनों पर ठीक-ठीक समान भावसे प्रतिबिम्बित हो रही थी। अवश्य ही उस षोड़शीके प्रति दोनोंकी अभिव्यक्ति भिन्न थी। जम्बुनदमयी प्रतिमा

प्राणवल्लभाकी अंग-द्युति समाई थी नीलमयंकके नेत्रोंमें, अतः उन्हें दर्शन हो रहा था उस नारी मूर्तिमें गौरांगका... हाँ, उसके उरस्थलसे अवश्य नीलिमा झाँक रही थी। उस किशोरीभावापन्नाका उरस्थल नीलिमा संपुटित हो इसमें आश्चर्य कैसा? नीलमयंकका ही तो नित्य निवास है वहाँ।

इधर नीलसुन्दरदेवकी अप्रतिम नव-नील-कांति-अंग-सुषमा नित्य प्रतिष्ठित है श्रीकृष्ण-जीवना श्रीराधाके हृत्पटलपर। वह दृष्टि सर्वत्र दर्शन करती है नीलिमाके ही। श्याम रंगपर दूसरा रंग चढ़ता भी तो नहीं है। अतः उन्हें स्फूर्ति हो रही थी वह श्यामवर्णा थी। उसके उरस्थलसे पीताभा ठीक वैसी ही प्रतीत हो रही है जैसे नवजलधरके मध्य तड़िल्लहरी। जो हो, यह तो विनोद है नित्य संविन्मय युगलका, जिसे सृष्टि पुद्गल मन-बुद्धि समझ सके, सम्भव ही नहीं।

परन्तु यहाँ तो इस भावराज्यकी, इन राग-स्फुरित लता-किसलयकी रागिणी, उसका स्वर कोई सुननेवाला उपस्थित ही नहीं हुआ। अनेक नभचर विहंगम अपनी अपनी प्रियाको साथ लिए इस काननके तरुजालमें अपने-अपने नीड़में निलीन रहते थे अवश्य...। यह उद्यान उसका विटप, पल्लव-पटल उनका आश्रय-स्थल था। परन्तु उस प्रदेशकी दिव्यताकी, नीलदम्पतिकी रति-क्रीड़ा-संकुल अभिव्यक्तियोंकी ओर उनकी दृष्टि नहीं जाती। वे या तो ऐन्द्रिक सुखमें निमग्न रहते अथवा व्यस्त रहते अपनी जीविकोपार्जनमें। इन सबसे तनिक भी समय यदि प्राप्त हो जाता तो परस्पर वैर-भाव बढ़ानेमें–अहंकार-दर्पयुत उद्गारोंसे एक-दूसरेको पीड़ा पहुँचानेमें ही उसे बिताते।

परन्तु इन क्रियाओंमें भी अनुस्यूत है एक ही सत्य! इन सब पुत्तलिकाओंके परिचालक भी हो तो तुम्हीं...। हाँ, मैं अवश्य मलिना अधमा हूँ। फिर भी मेरी वाणी, मेरा स्वरूप तुम्हें प्रिय है यह तुम्हारी मुझपर कृपा ही तो व्यक्त है...। तुम्हारा निरुपम अदोषदर्शी स्वभाव धन्य है...मेरे सारे कुरूप-कालुष्यको भूलकर तुम मुझे प्राप्त कर विह्वल हो जाते हो, यह तुम्हारी अद्भुत प्रीति ही तो है।

इन सारी बातोंको कहने-सुननेका लाभ क्या? जिनका विवेक इस धरातलपर

प्रतिष्ठित है उनके सम्बन्धमें क्या कहना-सुनना...? वैसे तो अनादिकालसे यह चलता ही आ रहा है कि मैं गाती हूँ तो तुम दत्तचित्त होकर श्रवण करते हो, चाहे वह सुरमें हो या बेसुरा-तुम इस ओर ध्यान नहीं देते। इसके पूर्व भी मेरे इस स्वर-ताल-हीन आलापको तुमने ही सुना है, और आगे भी तुम्हीं तो एक मात्र मेरे इस पीत तनके गाहक हो। मेरी वाणी श्रवण हेतु आतुर श्रुतिधरसे तुम निरवधि व्यग्र रहते हो।

प्रियतम, यह तो तुम जानते ही हो, उपसंहार और उपक्रम दोनों समान भावसे भावित हों तभी समरस निर्वाह हो पाता है रसका। अतएव उनके अथ और इतिमें विषयजन्य पार्थक्य नहीं रहता-मेरी भी इस सम्पूर्ण गाथाका अथ-इति एक ही है।

देखो, यशोदाके नीलमणि तुम ही तो, छाया रूपमें इस पिंजरमें प्रतिष्ठित हो.. नन्दगेहिनीके हृदय-प्रांगणका यह आलोक ही तो यहाँ प्रकट है।

जानते हो, इस सत्यको मैंने अनुभूत किया हैं। प्राणोंकी निष्ठा लेकर जब मैं तुम्हारी अर्चना करने बैठती, तुम्हारे चरण-प्रान्तमें सौरभित सुमन अर्पण करनेको प्रस्तुत होती तो मुझे स्पष्ट दीख पड़ता-वह पुष्प पिंजरपर चढ़ा दिया गया, मैं समझ नहीं पाती ऐसा क्यों और कैसे हो रहा था- भ्रमित हो उठी मैं; तब तुमने ही इस रहस्यसे मुझे परिचित कराया-इसका मर्म मुझे समझाया और तभी मैं वास्तविकता जान सकी। यह सब तुम्हारा ही खेल था-तुम स्वयं अर्चना स्वीकार करो अथवा अपनी ही प्रतिच्छायाके प्रति उसका अर्पण तुम्हें सुख प्रदान कर सके, इसका निर्णय तो तुम्हीं कर सकोगे? जो हो-इन आठ गीतोंकी तालिकाके साथ ही अब इस रसकथाका संवरण करती हूँ मैं-। तुम्हारी भी इच्छा सम्भवतः अब नवीन कौतुककी थी अतः हम दोनोंने अपना स्वरूप परिवर्तित कर इसमें प्रवेश किया नवीन अभिसन्धि लेकर।

विहगीसे मैंने षोड़शी बालाका रूप ग्रहण कर लिया, पिंजर भी बदल गया-अब वहाँ केवल दो ही उपस्थित थे-वह षोड़शी बाला और मैं...। मैं उस बाला के समीप अवस्थित थी और वह मेरे केशोंकी सज्जा-संरचना कर रही थी।

हमारे चारों तरफ एक भीड़ थी-वह मेला था या बाजार, समझना कठिन

था...। सब अपने-अपने स्वभाव क्रमानुसार स्व-सुख-साधनमें लगे हुए थे। मैं पुनः भ्रमित-सी होने लगी। सहसा मैंने देखा, वहाँ उपस्थित हैं एक लाक्षालोहित-कौषेय परिधान धारी साधु और दूसरा अनन्त-ब्रह्माण्ड-मण्डल-व्यापिनी मायाको करतल गत किए एक वणिक पुत्र। दोनों रस-माधुरी, स्वरूप-माधुरी, लीला-माधुरी आस्वादनरत रस-चर्चा कर रहे हैं।

उसी रस-कण वृष्टिके अंतरालसे उस अशेष वैचित्र्यमय वणिक पुत्रने अपने कौशल प्रकाशनसे उस मुण्डित योगिराजपर अपने सच्चित-स्पर्शसे शक्तिपात कर-'न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः' जैसे स्थानोंमें भी प्रवेशकी अबाध गति उसे प्रदान कर दी... साथ ही दर्शन करा दिए अपने आत्म-स्वरूपके। अपने अविच्छिन्न ऐक्यसे परिचित करा दिया-'देखो, नन्दग्राम स्थित उस नील-प्रतिमा और इस पिंजरके अधिदेवता एक ही हैं-'एक स्वरूप सदा द्वै नाम'। इनमें कभी पार्थक्यका भान मत होने देना। अपनी मानसी वृत्तिको सदा संयत रख इस लीलाका आस्वादन करना। यह व्रजकुलचन्द्रमाकी नित्य निवास-स्थली है, उनका ही द्वैत-प्रपंचशून्य स्वरूप है।'

इसके आगेकी रसकथा भावीकी सूचना जागतिक बुद्धिका अध्यवसाय नहीं-उसके द्वारा ग्राह्य नहीं-अवश्य ही मेरे प्राण-सार-सर्वस्वने भावी चित्रको फलकपर उतारकर मुझे दिखला दिया-एक तालिका बना दी आगेके लीलाक्रमकी।

विक्षिप्त हुई-सी मैं तुमसे बारंबार एक ही प्रश्न कर रही थी-महारस कहाँ है? चित-पीयूषका उत्स किस दिशामें है? तुम बारंबार मेरा चिबुक पकड़कर मुझे दिखलाते-प्राणवल्लभे, देखो सही, यह नीलबिन्दु निर्मित नीड़ ही तो चिदविलासकी रस-तरंगिणीका अधिपति सत्य है, और मैं अचकचाई-सी बारंबार तुम्हारी ओर देखने लगती...। परन्तु ठीक-ठीक हृदयंगम कर पाना मेरे लिए कठिन हो रहा था-तुमने ही मेरी इस सरस भ्रांतिका निवारण किया, अपनी उक्तिका अर्थ जाननेकी शक्ति प्रदान कर दी अन्तर्भेदी दृष्टिका दान करके। इतना ही नहीं अपने अखिल-रसामृत-सिन्धुमें मुझे निमग्न कर निर्मूल कर दिया मेरी रसहीनताको। तभी मैं इसका मर्म समझ सकी।

मरुप्रदेशके उस नीरव निशीथमें स्वयं प्रकट होकर तुम उस मेरी सम्पूर्ण आसक्तिके केन्द्रबिन्दु पिंजरसे सटकर खड़े थे—पीताभ बालुका प्रसरित उस सुविस्तीर्ण मरुस्थलमें मेरे लिए यह स्वप्नवत सत्य संघटित हो रहा था—और मैं मौन भविष्यके गर्भ में अवस्थित भावीकी लिपिको पढ़ते हुए तुम्हें, बस तुमको ही निहार रही थी। उस भाव-सन्धि बेलामें कब तुमने उस पिंजर-छड़-स्पर्शके माध्यमसे अतुल शक्तिका अवतरण कर दिया मुझपर, मैं इसे जान तक न सकी। परन्तु अब मुझ दीना भिक्षुकीका मँगतापन सदा-सर्वदाके लिए मिट चुका था। तुम्हारे निरावरण दर्शनका सौभाग्य प्रदान कर दिया था तुमने मुझको। अब भ्रमके धरातलकी ध्वनि मेरे कर्णछिद्रोंमें प्रवेश नहीं पाती—बुद्धि विपर्ययका मार्ग रुद्ध जो कर दिया था तुमने।

अबतो गोष्ठ, कुंज, निकुंज, निभृत निकुंज जैसे सुगम-अगम सभी स्थलोंमें मेरे स्वच्छन्द विचरणकी योग्यताका समावेश कर दिया था तुमने। तो गोचारणके लिए वनगमन हो, मुरली-रवसे मुखरित व्रजपुर सहचरी वृन्दकी सन्निधि हो, अथवा हो एकाकी कुंजमें एक प्राण दो देह, कहीं मुझपर कोई प्रतिबन्ध रहा ही नहीं... विचारोंकी एक आँधी-सी चल रही थी मेरे मानस में कि पुनः दृश्य बदला। एक नीली मूर्ति सामने आकर अप्रतिम छटा बिखेरने लगी और लीन हो गए मेरे मन-प्राण उसमें ही। इधर नाथ सम्प्रदायकी उस नगरीमें एक वैश्य बालककी महायात्रा आरम्भ होने जा रही थी। पिंजरसे जुड़कर भाव-वल्लरीपर सरकती हुई मैं पर्याप्त दूर निकल चुकी थी, परन्तु फिर भी कारण-विशेष वश यह संवादी स्वर रस अभिवृद्धि ही करेगा अतएव मैंने अपना स्वर उसमें मिला दिया।

नैसर्गिक वत्सलता कितनी सरस-सुमिष्ट होती है—पिंजर प्रकम्पित करके इसे तुमने मुझे जो दिखलाया उसका इतिहास परम शुभ सौंदर्य-माधुर्य-सुखपूरित है। परन्तु इस गुह्य तथ्यको यहाँ प्रकट करनेका अब अवकाश नहीं रह गया है।

प्रियतम यह पिंजर ही तो प्रतीक है—आधान है मेरे सम्पूर्ण स्वजन-सम्बन्धोंका—मेरे समस्त वस्त्राभूषण उपकरणोंका—इस कुल, उस कुल दोनों कुलोंके परिकरों, पितृ-गृह

श्वसुरालयका। परिजन-वृन्द, गोधन, अलंकार-पट-परिधान जीवन धारणके लिए आवश्यक सभी उपकरण...सम्पूर्ण अस्तित्व सब कुछ समाहित है उस कृष्ण पिंजरमें ही तो। सन्धिनी शक्तिकी परिणतिका प्रतीक भी तो यह नीलपुंज पिंजर ही है।

प्रियतम, समझ नहीं पाती हूँ... क्या कहूँ और क्या न कहूँ...? क्या विस्मृत करूँ, किसे स्मृति पटलपर संजोऊँ? प्रतिदान-निरपेक्ष तुम्हारे स्नेहके कूलविहीन उद्वेलनको क्या नाम दूँ? इस इन्द्रनील विरचित पिंजरको विविध भावभंगिमाओंसे गतिशील रखकर, जैसा प्रीतिपूर्ण आश्रय तुमने मुझे प्रदान किया है उसके सम्बन्धमें मैं क्या कहूँ? प्रियतम! आद्यन्त दैहिक-सुख-शून्य अगणित अनुभूतियोंका जो शृंग मेरे समक्ष है वह लाजवन्ती लतिकाका झुरमुट ही तो है—और तुम जानते ही हो लाज भरी ये कलियाँ स्पर्श-सुखको नहीं स्वीकारतीं, अविलम्ब समेट लेती हैं अपने आपको अपने आपमें। प्रीति ढली ये स्वसंवेद्य अनुभवकी कलिकाएँ भी तो वाणीकी मुखरताको स्वयंसे संस्पर्शित नहीं कराना चाहतीं। 'प्रेम हृदयकी वस्तु है परम गुह्य अनमोल' प्राणनाथ, तुमने तो अपने इस लघु-से प्रतीत होने वाले पिंजर परिसरमें एक नगरकी संरचना कर दी। उस निर्माणके अन्तरालसे तुम्हारा मेरे प्रति, जो आत्यन्तिक ममत्व एवं मुझे सुखदानकी जो लालसा है वही तो प्रतिबिम्बित हो रही थी...। मेरे मनोरंजनके सारे साधन जुटाकर मेरी मनुहार ही तो कर रहे थे तुम! परन्तु तुम्हारे प्राणोंके उमड़ते इस प्यारमें मुझे तो सर्वत्र तुम्हीं-तुम दिख रहे हो। वह तुम्हारी निर्मिति ज्यों-की-त्यों है—परन्तु उसमें निवास करनेवाला तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं। जब यह दृश्य प्रगट हुआ उस क्षण भी तुम ही वहाँ मूर्त... उपस्थित थे, और जब कोई सत्ता दृश्यमान जगतकी नहीं थी, तब भी तुम्हारी अवस्थिति तो वहाँ मैं सुस्पष्ट देख ही रही थी—तुम्हीं तो परिपूरित हो कण-कणमें।

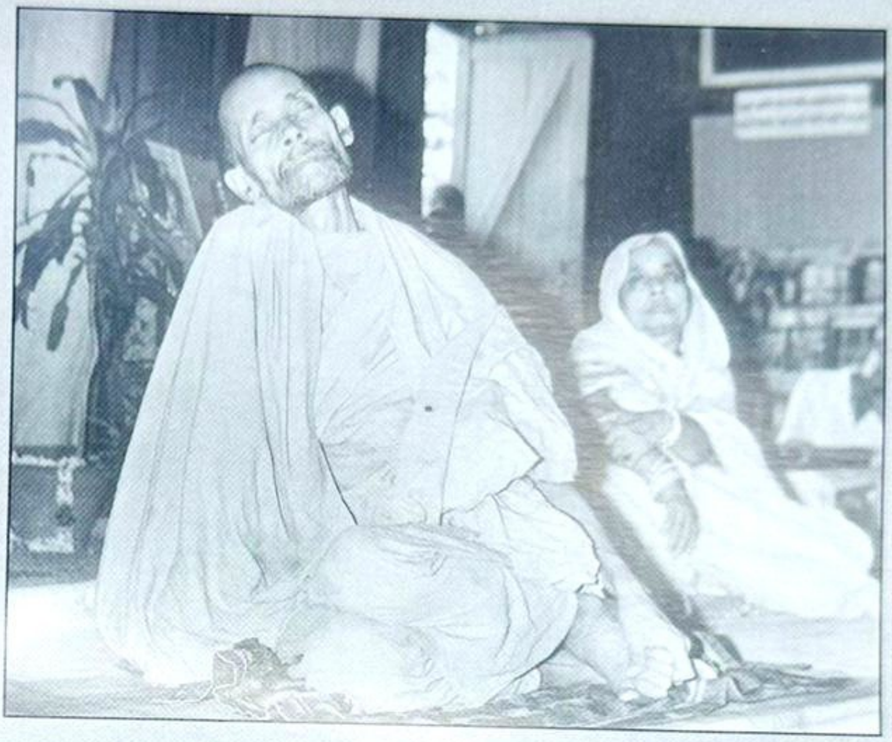
प्राणनाथ, इन असंख्य रूपोंमें स्वयंको मेरे सामने प्रकट कर तुमने जिस निराविल नेहका परिचय दिया है—प्रतिक्षण देते रहते हो—उसको वाक्-परिधान देना क्या सम्भव है? मेरी दृष्टि तुम्हारे इस अहैतुकी स्नेहको देखकर कृतज्ञता लिए तुम्हारे चरण-नखचन्द्रोंपर ही टिकी रहती है; और स्वसुख-वांछा-निरत स्वयंकी ओर जब मेरी दृष्टि जाती है तब

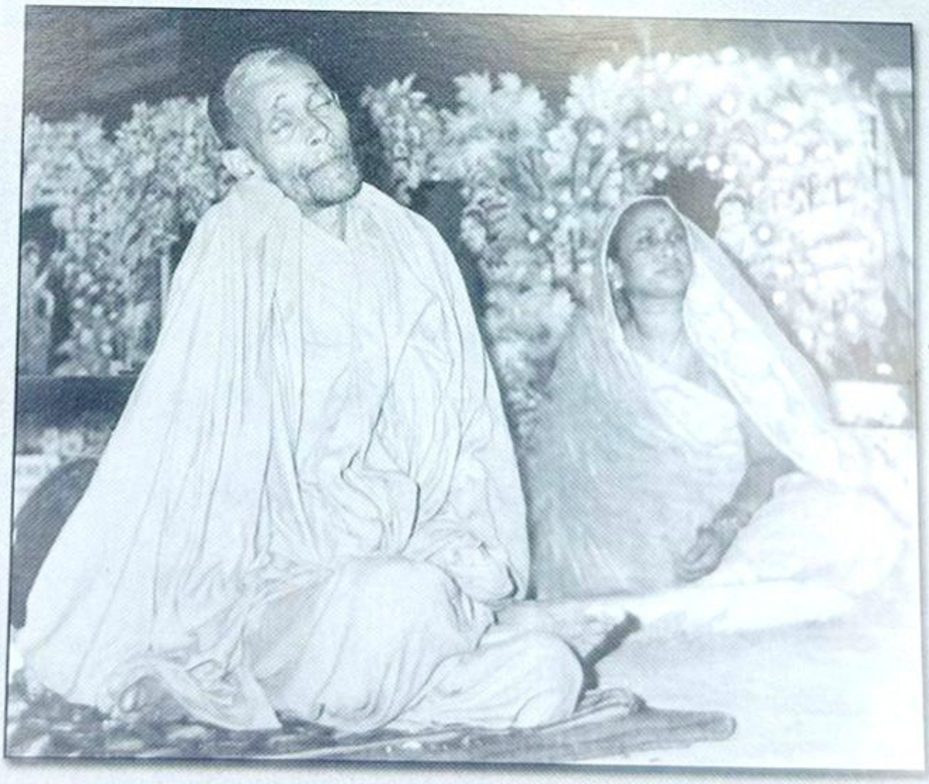
लज्जा और अपनी स्नेहहीनताके भारसे आँखें झुक जाती हैं। तुम स्वयं देख लो इन दृग-पपनियोंपर संकोचका कितना बोझा है! वाणी भी अब विरामकी दिशामें ही अग्रसर हो रही है। परन्तु इस रस-गाथाको विराम देनेके पूर्व अपने मनकी यह बात तुमसे नहीं कह दूँगी तो यह कथा अधूरी रह जाएगी। आज तुम्हें हृदय खोलकर बतला दे रही हूँ-यह मेरे रसनिधिकी सिद्ध कुंजिका है, यदि इसे तुम्हारे हाथमें नहीं सौंपी तो मेरा सम्पूर्ण इतिवृत्तात्मक वर्णन अर्थहीन हो जाएगा-अतः तुम्हें उसका संकेत प्रदान कर रही हूँ-ध्यानसे सुनना भला...!

भावलहरियाँ इतिवृत्तात्मक कदापि नहीं होतीं। उस 'इन्द्रनीलमय पिंजर' के अभिनव आकर्षणसे सम्मोहित होकर ही मुक्त नभचारिणी विहंगिनी अपने पक्षी-स्वातंत्र्यका मोह त्यागकर धरित्रीके उस पावन खण्डपर उतर आई थी। उस श्यामल पिंजरने रुद्ध कर दी थी गति विहगीकी। परिक्रमा कर सहसा यन्त्रचालित-सी घुस पड़ी थी वह उसमें और रुद्ध हो गया था पिंजरका द्वार। फँस गई उस पिंजरेमें-वह चंचला विहगी। यही अपेक्षित था-स्वयं भगवान व्रजेन्द्रनन्दनको। रस-वर्षणकी अभिसन्धि लेकर पहुँचा दिया था उन्होंने विहगीको अपने विश्राम-सदनमें। तथापि यदा-कदा, पुरातन स्वभाववश उसके प्राण व्योमचारण हेतु आकुल हो उठते और पिंजर- परिधिमें भी वह उड़नेका उपक्रम करने लगती। नीलमयंकमतिने बन्द कर दिया द्वार इस उड़ानका भी।

माँ रामदेईके रूपमें संक्रमित कर दी अपनी लीला शक्ति। ममताकी डोरी बटकर माताने ऐसा जकड़ा मुझको कि असम्भव हो उठा पद-विन्यास। यदि यह मातृबन्धन नहीं होता तो विहगी इस पिंजरमें भी कदाचित ही स्थिर रहती। उड़नेका उपाय, प्रक्रिया उसकी चलती ही रहती। परन्तु अब भी वह शान्त न थी। 'स्वभावो दुरतिक्रमः' -पैर बँध चुके थे, परन्तु पंख फैलानेमें तो कोई बाधा थी नहीं। खगकुल स्वभाववश द्रुतगतिसे पंखको ही फड़फड़ाती रहती। नीलोदधि-निमज्जितने रचनाकी नवीन कौतुककी।

अपनी कुंचित अलकावलीकी एक लट तोड़कर, उसे स्वरूप प्रदान कर दिया श्रीराधाकी सहोदरा बहिन मंजुश्यामाका। प्रतिष्ठित कर दिया विहगीके प्रबल आकर्षण





ये रूप सभी प्राणों से प्रिय

बिम्बको बहिन सावित्री (पोद्दारजीकी पुत्री) के रूपमें। भगिनीके अनाविल अनुरागकी प्रगाढ़ताने आवेष्टित कर लिया चंचला खगिनीके पक्षोंको। नित्य बन्दिनी बन गई वह गतिशीला उस कृष्णप्रतिबिम्बरूपाके निरुपम नेहकी। द्रुतगतिसे फड़-फड़ करते वे पंख अब बँध चुके थे उस अलकपाशसे। उनकी फड़फड़ाहटकी गति यदा-कदा इतनी तीव्रता धारण कर लेती थी कि ऐसी प्रतीति होने लगती मानों ये पाँखें टूटकर गिर ही जाएँगी। इतना ही नहीं यदि उस विहंगिनीकी इस बहिनका स्वभाव-साम्य नीलचन्द्रसे न होता, इसकी स्वाभाविक क्रियाओंमें पीतवसनके आनुगत्यकी प्रतिच्छाया नहीं होती-तो जानते हो क्या होता....? ये बँधे हुए पंख यों ही बँधे रह जाते, ये अवश उड़ तो नहीं पाते-परन्तु प्राण अवश्य इस खग-कलेवरका परित्याग कर उड़ जाते...। इतना ही नहीं यदि दैव-दुर्विपाकसे ये इस अपने देह-नीड़का परित्याग नहीं भी कर पाते-तो रसहीन, नीरस तो हो ही जाते...। यशोदानन्दन मेरे प्राणधन, वह रसहीना, शुष्क मरुस्थलकी उत्तप्त वायुसे झुलसी हुई विदग्धा, कहाँसे लाती वह अभिनव रस जलधार, जिससे प्रतिदिन नहलाती हूँ मैं तुम्हें। मेरे असंख्य प्राणोंके प्राण नीलम हे! उसकी तो सम्पूर्ण गति-अवस्थिति तुमने अपनी रुचिके अनुरूप कर दी। उसके स्वातंत्र्यको कहाँ स्थान था अब पलायन हेतु। यह अतुल अनुपम विवशता ही बन गयी उसके लिए निसर्गका नियम-अब तो निरवधि बँधी रहेगी वह इससे। अस्तु,

'इन रूपोंके प्रति मेरा कैसा और कितना अद्भुत संयोग रहा है, कैसा आत्मार्पण है, कैसी विशुद्ध रसमयी प्रीति है, कैसा प्राणोंका उमड़ता प्यार है, कैसे बताऊँ...?

'ये रूप सभी प्राणोंसे हैं प्रिय अधिक अतः मुझको प्रियतम'

ये रूप मुझे प्राणाधिक प्रिय हैं... इनका वियोग धूमिल कर देगा उस अमृतपूर लीला-रस-प्रवाहको... अतः ये तो मेरी चिरसंगिनी रहेंगी ही... इनका परित्याग मैं कदापि नहीं कर सकती।'

'मेरी मैयाका पर्यवसान होगा व्रजकुलचन्द्रमाकी दृगपुतलियोंमें। वहीं तो नित्य-निरंतर निवास है मेरा-मुझ राधाका। मेरी बहिन आकर समाविष्ट होगी पहले व्रजजनजीवनसर्वस्वमें,

फिर स्थान ग्रहण करेगी वह हम दोनोंकी बेसरमें। यह नीलपिंजर तिरोहित हो जाएगा मेरे नीलसुन्दरदेवकी नीलद्युतिमें।''

किशोरी भावोदधिमें उत्थित ऋजु-कुटिल तरंगोंमें नित्य-निरंतर निमग्न रहते हैं रसिक शेखर व्रजराजकुमार। अतर्क्य है उनका अविनाभाव नित्य अविच्छेद्य ऐक्य।

प्राणनाथ, मेरे प्रियतम, ये मेरे हृदय-नदमें प्रस्फुटित १०८ नील-नीरज हैं। जिन्हें मैं तुम्हारे चरण सरोरुहमें अर्पित कर रही हूँ। हे वंशीधारी, मुरलीमनोहर, तुम्हारी चरणरज-कणिकाका आश्रय ग्रहणकर, उसका स्पर्श पाकर ही अपनी यह रुचि भी व्यक्त कर रही हूँ मैं... प्रियतम मेरी यह पावन अभिलाषा भी तुम अवश्य पूर्ण कर ही देना। देखो शारदा गोपीकी पुत्री, मेरी बहिन ललिताकी छायासे ही जो यहाँ नित्य भावित है, वह कालके अनंत प्रवाहमें सदा ही तुमसे सन्नद्ध रहे, उसका कभी तुमसे अलगाव-बिलगाव हो ही नहीं।

